जिज्ञासा

साम्प्रदायिकता

सुभाष चन्द्र

साम्प्रदायिकता

जिज्ञासा

साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलते शायद लज्जा आती है, इसलिए वह गधे की भांति जो सिंह की खाल ओढ़ कर जंगल के जानवरों पर रोब जमाता फिरता था, संस्कृति का खोल ओढ़ कर आती है। हिन्दू अपनी संस्कृति को कयामत तक सुरक्षित रखना चाहता है, मुसलमान अपनी संस्कृति को। दोनों ही अभी तक अपनी-अपनी संस्कृति को अछूती समझ रहे हैं। यह भूल गए हैं कि अब न कहीं मुस्लिम संस्कृति है, न कहीं हिन्दू-संस्कृति, न कोई अन्य संस्कृति, अब संसार में केवल एक संस्कृति है और वह है आर्थिक संस्कृति, मगर हम आज भी हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति का रोना रोए चले जाते हैं। हालांकि संस्कृति का धर्म से कोई संबंध नहीं। आर्य संस्कृति है, ईरानी संस्कृति है, अरब संस्कृति है, लेकिन ईसाई संस्कृति और मुस्लिम या हिन्दू संस्कृति नाम की कोई चीज नहीं है। हिन्दू मूर्तिपूजक है, तो क्या मुसलमान कब्रपूजक और स्थानपूजक नहीं है, ताजिए को शर्बत और शीरीनी कौन चढ़ाता है, मस्जिद को खुदा का घर कौन समझता है? अगर मुसलमानों में एक सम्प्रदाय ऐसा है, जो बड़े-से-बड़े पैगम्बरों के सामने सिर झुकाना भी कुफ्र समझता है, तो हिन्दुओं में भी एक सम्प्रदाय ऐसा है जो देवताओं को पत्थर के टुकड़े और नदियों को पानी की धारा और धर्मग्रन्थों को गपोड़े समझता है। यहां तो हमें दोनों संस्कृतियों में कोई अन्तर नहीं दीखता।

—प्रेमचंद

स्वतन्त्रता के बाद भी साम्प्रदायिकता हमेशा उच्च-वर्ग के हितों की सेवा करने का औजार रही है। समाज के सामान्य लोगों के दुख-दर्दों से साम्प्रदायिकता का कोई-लेना-देना नहीं है। अपने ही सम्प्रदाय के बीच अशिक्षा, गरीबी, कुपोषण, अंध-विश्वास, बेकारी, भ्रूण-हत्या, स्त्री-विरोधी पुरातन मानसिकता, जाति की अमानवीय प्रथा के प्रति कभी आवाज नहीं उठाई जाती क्योंकि साम्प्रदायिक दृष्टि में ये समस्याएं ही नहीं हैं। साम्प्रदायिकता के लिए गरीबी समस्या नहीं है बल्कि गरीब समस्या हैं, उनकी मैनेजमेंट करना और उनके रोष को उन्हीं के हितों के खिलाफ प्रयोग करना उसकी चिंता हैं, और निहित स्वार्थ इस कुत्सित कार्य को सिद्ध करने के लिए साम्प्रदायिकता के विषैले नाग को अपने पिटारे से निकालते रहते हैं।

—किताब से

© साहित्य उपक्रम
E mail : sahitya_upkram @ yahoo.co.in

ISBN: 81-8235-042-5

प्रथम संस्करण : जनवरी 2006
द्वितीय संस्करण : जनवरी 2008

लेजर टाइपसेटिंग
साहित्य उपक्रम

मुद्रक
अर्पित प्रिंटोग्राफर्स
ई-मेल : arpitprinto@yahoo.com
फोन : 9350809192

आवरण
चित्र— हेनरी रूसो

मूल्य : 25 रुपये (पेपर बैक)
60 रुपये (हार्ड कवर)

साम्प्रदायिकता

जिज्ञासा

सुभाष चन्द्र

साहित्य उपक्रम

नरोदा पाटिया से भी भयानक है हमारा अपना मोहल्ला
जहां एक भी मुसलमान नहीं है
नरोदा पाटिया में जो दौर अभी चल रहा है
कब का पूरा हो चुका है हमारे यहां
नरोदा पाटिया में कत्ल, लूट, बलात्कार की जरूरत हुई
हमारे मोहल्ले में यह जहमत भी नहीं उठानी पड़ी
नरोदा पाटिया में संविधान और मीडिया शर्मसार तो हुए
हमारे मोहल्ले में वे भी सीनाजोरी में लगे हुये हैं

हम जो मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से निकले हैं
आश्वस्त हैं कि नरोदा पाटिया अभी है हमारे बीच

—विकास नारायण राय

अनुक्रम

- प्राक्कथन 7
- साम्प्रदायिकता 9
- धर्म और साम्प्रदायिकता 17
- संस्कृति और साम्प्रदायिकता 27
- धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिकता 36
- राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता 43
- साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा 49
- साम्प्रदायिकता और साम्राज्यवाद 57
- हिन्दू बनाम हिन्दुत्व 59
- साम्प्रदायिकता और जातिवाद 62
- गाय-प्रेम और साम्प्रदायिकता 68
- साम्प्रदायिकता और इतिहास 76
- साम्प्रदायिकता और मिथ्या प्रचार 94
- परिशिष्ट— रामधारी सिंह दिनकर 104

प्राक्कथन

भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता ने जगह बना ली है। साम्प्रदायिक दुष्प्रचार से यह लोगों की सामान्य चेतना का ही हिस्सा बना दी गई है। आम लोग स्वभावत: ऐसी प्रतिक्रिया करते हैं जो साम्प्रदायिकता को मान्यता देती है। उनको इसमें कुछ भी गलत नहीं लगता, सबसे चिन्ता की बात यही है कि वे इसे धर्म-प्रेम, देश-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम, संस्कृति-प्रेम व इतिहास-प्रेम के नाम पर करते हैं। ऐतिहासिक क्रम से देखें तो साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति अंग्रेजों ने भारत में अपना शासन सुरक्षित करने के लिए की थी। जब भी स्वतन्त्रता आन्दोलन तेज होता था, साम्प्रदायिक शक्तियां सक्रिय हो जाती थीं और लोगों को धर्म के आधार पर बांट देती थी, जिससे लोग आपस में लड़ने लग जाते थे और अंग्रेजी शासन को संजीवनी बूटी मिल जाती थी। स्वतन्त्रता से पहले अंग्रेजों ने हिन्दुओं व मुसलमानों के उच्च वर्ग को सरकारी नौकरियों का लालच देकर व सत्ता में भागीदारी का लालच देकर अपनी कुत्सित योजना में शामिल किया था। साम्प्रदायिकता की सबसे घृणित अभिव्यक्ति साम्प्रदायिक दंगों में होती है, लेकिन सिर्फ दंगों तक साम्प्रदायिकता को सीमित नहीं किया जा सकता। साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है, एक दृष्टि है जो समाज के विभिन्न मुद्दों पर— धर्म, संस्कृति, राष्ट्र, राजनीति, धर्मनिरपेक्षता, इतिहास व समाज के अन्य पहलुओं पर अपना मत व्यक्त करती है। अपनी इस प्रणाली से वह लगातार समाज में सक्रिय रहती है।

साम्प्रदायिकता धर्म का इस्तेमाल करती है, धर्म के साथ जुड़ी संकीर्णता, पिछड़ापन व अंधविश्वास की खुराक लेकर वह समाज में वैधता बनाने की कोशिश करती है और लोगों को अपने साथ जोड़ने में कामयाब हो जाती है। वास्तव में उसका धर्म के मूल्यों से कोई लेना-देना नहीं है, बल्कि वह धर्म की गलत व्याख्या करके उसको भी विकृत करती है। कभी वह संस्कृति के रक्षक के तौर पर तो कभी राष्ट्रवादी होने का दावा करती है, अपने वास्तविक चरित्र को छुपाने के लिए वह तरह-तरह के प्रपंच रचती है, लोगों की भावनाओं से जुड़े हुए मुद्दे उठाकर समाज में अपना स्थान बनाती है।

समाज में साम्प्रदायिक चेतना के प्रसार का परिणाम ही है कि साम्प्रदायिक

दंगे और हिंसा भारतीय समाज के अनिवार्य लक्षण की तरह बन गये हैं। छोटे-मोटे गांव-गली के झगड़े व सामान्य-सी घटनाएं भी भीषण साम्प्रदायिक दंगों का रूप धारण कर भयंकर तबाही लाने में समर्थ हो जाते हैं। यह सब अचानक नहीं होता, बल्कि इसके पीछे निहित आर्थिक व राजनीतिक स्वार्थ जुड़े होते हैं, जिनको पूरा करने के लिए दंगे भड़काए जाते हैं। दंगा भड़काने के लिए लगातार तैयारी की जाती है, अनुकूल अवसर पर इसे अंजाम दिया जाता है। जब साम्प्रदायिक हिंसा व दंगे होते हैं तो साम्प्रदायिक शक्तियां खुले आम अपना खूनी खेल खेलती हैं और इस प्रकार साम्प्रदायिक चेतना के प्रसार में साम्प्रदायिक हिंसा बहुत बड़ी भूमिका अदा करती है।

साम्प्रदायिकता हमेशा उच्च-वर्ग के हितों की सेवा करने का औजार रही है। समाज के सामान्य लोगों के दुख-दर्दों से साम्प्रदायिकता का कोई लेना-देना नहीं है। अपने ही सम्प्रदाय के बीच अशिक्षा, गरीबी, कुपोषण, अंध-विश्वास, बेकारी, भ्रूण-हत्या, स्त्री-विरोधी पुरातन मानसिकता, जातिगत ऊंच-नीच की अमानवीय प्रथा के प्रति कभी आवाज नहीं उठाई जाती क्योंकि साम्प्रदायिक दृष्टि में ये समस्याएं ही नहीं हैं। साम्प्रदायिकता के लिए गरीबी समस्या नहीं है बल्कि गरीब समस्या हैं, उन्हें मैनेज करना इसका उद्देश्य है।

साम्प्रदायिकता की राजनीति को समझने के लिए उसकी विचारधारा को समझना पूर्व शर्त है। इसी बात को ध्यान में रखकर इस पुस्तिका की रचना की गई है। यदि इस कार्य में यह जरा भी मदद करती है तो मेरा उद्देश्य सफल होगा।

मैं कुरूक्षेत्र के साथियों का आभारी हूं जिन्होंनें इस काम में सदा हौसला बढ़ाया व समय-समय पर अमूल्य सुझाव दिए हैं— विशेषकर श्री ओम सिंह अशफाक जिन्होनें प्रारूप पढ़कर गलतियां भी दूर कीं, रविन्द्र गासो, ओमप्रकाश, चन्दी, विक्रम मित्तल और राजवीर पाराशर का। मैं विपुला के प्रति भी धन्यवाद करना अपना कर्तव्य समझता हूं, उनके सहयोग के बिना तो इसके बारे में सोचना भी मुश्किल होता।

–डॉ. सुभाष चन्द्र

साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता मात्र दो धर्मों के बीच विवाद, झगड़ों व हिंसा की घटनाओं का ही नाम नहीं है। यह दो धार्मिक समुदायों के विवादों तक सीमित नहीं बल्कि इसने एक विचारधारा का रूप धारण कर लिया है, अपनी एक तर्क-पद्धति विकसित कर ली है जिसके आधार पर यह समाज के विभिन्न पक्षों पर विचार करती है। समझ के स्तर पर साम्प्रदायिकता को एक विचारधारा के रूप में न देख पाना साम्प्रदायिकता को पूरे तौर पर न समझना है 'आखिरकार साम्प्रदायिकता सबसे पहले एक विचारधारा है, एक विश्वास-प्रणाली है जिसके जरिए समाज, अर्थव्यवस्था और राजतंत्र को देखा जाता है। यह समाज और राजनीति को देखने का एक तरीका है।'[1] साम्प्रदायिकता एक राजनीतिक दृष्टिकोण है जिसमें यह माना जाता है कि एक धार्मिक समुदाय के सभी लोगों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक हित एक जैसे होते हैं। साम्प्रदायिकता एक कदम आगे रखकर कहती है कि अलग-अलग समुदायों के हित न केवल अलग-अलग होते हैं, बल्कि एक-दूसरे के विपरीत भी होते हैं। इस तरह साम्प्रदायिकता एक नकारात्मक सोच पर टिकी होती है। यदि इस बात को समझा जाए तो इसका अर्थ निकलेगा कि जैसे भारत में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी आदि विभिन्न धर्मों-सम्प्रदायों के लोग रहते हैं तो साम्प्रदायिकता की विचारधारा के तर्क के अनुसार सभी हिन्दुओं के हित एक जैसे हैं, सभी मुसलमानों के एक जैसे, सभी सिक्खों के एक जैसे व सभी ईसाइयों के एक जैसे। एक समुदाय के हित न केवल एक जैसे हैं बल्कि एक दूसरे के विपरीत हैं। हिन्दुओं के हितों की मुसलमानों, सिक्खों, ईसाइयों के हितों से टकराहट है। इसी तरह मुसलमानों व अन्य धर्मावलंबियों की अन्य धर्मों / समुदायों के साथ। इस धारणा के अनुसार तो भारत में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई शान्तिपूर्ण तरीके से साथ-साथ रह ही नहीं सकते और साम्प्रदायिक झगड़े तो अवश्यंभावी हैं। यह धारणा न तो तर्क के आधार पर सही है और न ही तथ्यपरक है।

यह बात बिल्कुल भी सही नहीं है कि एक धर्म के मानने वाले लोगों के हित एक समान होते हैं। जब तक समाज वर्गों में बंटा है, समाज में गरीब और

अमीर हैं तब तक एक धर्म के लोगों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक हित एक समान हो ही नहीं सकते बल्कि एक ही धर्म के मानने वाले गरीब और अमीर के सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक हित परस्पर विरोधी होते हैं और दूसरी तरफ अलग-अलग धर्मों को मानने वाले अमीरों के हित एक जैसे होते हैं और गरीबों के हित एक जैसे होते हैं। उदाहरण के लिए एक मजदूर हिन्दू या मुसलमान अपने ही धर्म के पूंजीपति के कारखाने में काम करते हैं तो उनके आर्थिक हित एक जैसे कैसे हो सकते हैं जहां पूंजीपति हमेशा अपने लाभ को बढ़ाने के लिए मजदूर की मेहनत का शोषण करने की नई-नई योजनाएं बनाता रहता है। इसके विपरीत पूंजीपति हिन्दू और पूंजीपति मुसलमान के हित एक जैसे होते हैं। गरीब हिन्दू व गरीब मुसलमान के जीवन जीने के ढंग में, रहन-सहन, शिक्षा-स्वास्थ्य, कार्य-स्थितियों में समानता होती है जबकि अमीर हिन्दू या मुसलमान की जीवन शैली, रहन-सहन, ठाठ-बाट व ऐश-विलास में समानता होती है। साम्प्रदायिक शक्तियां और साम्प्रदायिकता की विचारधारा, गरीबों में एकता न होने पाए, इसलिए उनमें वर्गीय-एकता को कमजोर करने के लिए व दरार पैदा करने के लिए यह सवाल उठाते रहे हैं। यदि गरीब लोगों (जो कि इसलिए गरीब हैं क्योंकि उनकी मेहनत का फल कोई और यानी अमीर खा रहा है) को इस बात का अहसास हो जाए और उनमें एकता स्थापित हो जाए तो फिर पूंजीपति हिन्दू व मुसलमान गरीब हिन्दू व मुसलमान को लूट नहीं सकेंगे। अपने इस ठाठ-ऐश्वर्य को जारी रखने के लिए 'फूट डालो और राज करो' की नीति के तहत साम्प्रदायिकता की यह घिनौनी चाल उनके बहुत काम आती है।

साम्प्रदायिकता हमेशा इस बात पर जोर देती है कि दो धर्मों के लोग इक्ट्ठा नहीं रह सकते। इसी बात को आधार बनाकर 'द्वि-राष्ट्र' का सिद्धान्त गढ़ा गया और हिन्दुस्तान के दो टुकड़े हुए— भारत और पाकिस्तान बने, लेकिन यह सिद्धांत कितनी झूठ और कृत्रिमता पर खड़ा था। यह तब साबित हुआ जब पाकिस्तान के भी दो टुकड़े हो गए और धर्म के आधार बनने वाले राष्ट्र और 'एक धर्म एक देश' की अवधारणा का थोथापन उजागर हो गया। साम्प्रदायिकता की दृष्टि धारण किए हुए लोगों की यह बात तथ्यपरक भी नहीं है कि विभिन्न धर्मों के लोग शांति के साथ एक जगह नहीं रह सकते। भारत में ही विभिन्न धर्मों के लोग हजारों सालों तक शांतिपूर्ण ढंग से रहते आए हैं। विभिन्न धर्मों के लोग एक-दूसरे से इतने घुल-मिल गए हैं कि यह अनुमान लगाना कठिन है कि कौन सा विश्वास या रिवाज किस धर्म का है। विभिन्न धर्मों के लोगों ने खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा व आचार-विचार में एक दूसरे से बहुत कुछ सीखा है। आधुनिक चिन्तक व समाज सुधारक

सर सैयद अहमद खान ने लिखा है कि 'भारत हिन्दू और मुसलमान दोनों का घर है। दोनों भारत की फिज़ा में साँस लेते हैं और पवित्र गंगा और जमुना का पानी पीते हैं। दोनों इसी धरती की उपज खाते हैं। लंबे समय से यहाँ रहने के कारण दोनों का खून बदला है, दोनों का रंग भी समान हो गया है, चेहरे भी एक ही तरह के हो गए हैं। मुसलमानों ने हिंदुओं के सैंकड़ों रीति-रिवाज सीख लिए हैं तथा हिन्दुओं ने भी मुसलमानों से सैंकड़ों चीजें सीखी हैं। दोनों का इतना मेलजोल हुआ है कि इससे एक नई जबान उर्दू का जन्म हुआ है, जो इन दोनों में से किसी की भाषा नहीं है। भारत के साझे निवासी होने से हिंदू और मुसलमान एक जाति हैं तथा देश के साथ-साथ इस दोनों की उन्नति परस्पर सहयोग, सद्भाव और प्रेम से ही संभव है। एक दूसरे के प्रति विरोध, कलह और विभेद से हम परस्पर का विनाश ही करेंगे। यह हमारा दुर्भाग्य है कि जो लोग इन बातों को नहीं समझते और हिंदू-मुस्लिम के बीच विभेद पैदा करते हैं, यह नहीं समझ पाते कि ऐसी स्थिति में उनका ही नुकसान होगा और वे इन बातों से स्वयं को ही आघात पहुंचा रहे हैं। दोस्तो ! मैंने बार-बार कहा है कि हिन्दुस्तान एक दुल्हन की तरह है जिसकी दो खूबसूरत चमकीली आँखें हैं— हिन्दू और मुसलमान। यदि ये दोनों आपस में लड़ाई करेंगी तो खूबसूरत दुल्हन बदशक्ल हो जाएगी और यदि एक आँख दूसरे को नष्ट कर देगी, तो दुल्हन एक आँख ही गंवा बैठेगी। हिन्दुस्तान के लोगो अब यह तुम्हारे हाथ में है कि इस दुल्हन को भैंगी बनाओ या कानी।'[2]

साम्प्रदायिकता दो तरह की होती है— एक को नर्म/उदार (Soft) साम्प्रदायिकता कहा जा सकता है दूसरी फासिस्ट/कट्टर साम्प्रदायिकता। नर्म/उदार साम्प्रदायिक लोगों का मानना है कि एक धर्म या सम्प्रदाय के लोगों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक हित विशिष्ट भी होते हैं, जिनको हासिल करने के लिए बातचीत से या दबाव से जैसे भी हो पूरा करना चाहिए लेकिन साथ ही उदार/नर्म साम्प्रदायिक यह भी मानते हैं कि विभिन्न धर्मों के लोगों के सांझे हित हैं और इस साझेपन के कारण ही वे राष्ट्र बनते हैं इसलिए उन्हें अपनी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विकास के संघर्ष में साथ रहना चाहिए। दूसरे सम्प्रदाय या धर्म के प्रति उदार रूख के कारण ही इसको उदार साम्प्रदायिकता कहा जाता है। जो अपने सम्प्रदाय के हितों की पूर्ति के लिए जोर रखती है और इसके लिए अन्य सम्प्रदायों या धर्मों से सौदेबाजी भी करती है। स्वतन्त्रता संघर्ष के दौरान 1936 तक हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग व अकाली दल के उदार साम्प्रदायिक लोग बैठकर आपस में बातें भी करते थे और अपने झगड़े सुलझाते थे व अंग्रेजी सरकार पर दबाव डालकर अपनी बात मनवाने की कोशिश भी करते थे। आज की राजनीति में उदार साम्प्रदायिक

दलों में अकाली दल, केरल व तमिलनाडु की मुस्लिम लीग को और केरल के ईसाई राजनीतिक समूहों को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।[3]

फासिस्ट साम्प्रदायिकता, दूसरे धर्म व सम्प्रदायों के प्रति झूठ, घृणा और हिंसा पर आधारित होती है। इस किस्म की साम्प्रदायिकता दूसरे धर्म या सम्प्रदाय के अनुयायियों के प्रति घृणा पैदा करती है, उसके बारे में तरह-तरह के झूठ-मिथक गढ़ती है व इनको जोर-शोर से प्रचारित करती है तथा हिंसा का सहारा लेती है। फासिस्ट साम्प्रदायिक बड़े आक्रामक तेवर के साथ इस बात को लोगों की चेतना का हिस्सा बनाने की कोशिश करते हैं कि एक समुदाय को खत्म करने में ही दूसरे समुदाय का हित है, दोनों समुदायों के हित परस्पर विरोधी हैं इसलिए वे साथ-साथ नहीं रह सकते। स्वतन्त्रता-संघर्ष के दौरान 1937 के बाद इस किस्म की साम्प्रदायिकता ने जोर पकड़ा। मुस्लिम लीग व जिन्ना ने तथा हिन्दू महासभा व वीर सावरकर दोनों ने कहा कि हिन्दू और मुस्लिम दो अलग-अलग राष्ट्र हैं, दोनों एक राष्ट्र में नहीं रह सकते। हिन्दू साम्प्रदायिकों ने इस बात का खूब प्रचार किया कि हिन्दू राष्ट्र में अल्पसंख्यक दास, गुलाम और दूसरे दर्जे के नागरिक बनकर रहें तो जिन्ना ने धर्म के आधार पर अलग राष्ट्र की मांग रखी जो दुर्भायवश पाकिस्तान के रूप में पूरी हुई। घृणा, अलगाव, निंदा और हिंसा पर टिकी साम्प्रदायिकता को आजादी के बाद आर.एस.एस. व इसके अनुसांगिक संगठनों ने अपनाया, जिसने मुसलमानों के बारे में झूठ, घृणा का इतना आक्रामक दुष्प्रचार किया कि उनको सभी समस्याओं का दोषी ठहरा दिया। इसी तरह सिक्खों में भिंडरावाला ने और मुसलमानों में जमात-ए-इस्लामी आदि ने इस किस्म की साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया।[4]

साम्प्रदायिकता ने हमेशा उच्च वर्ग के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक हितों की रक्षा करने में तत्परता दर्शाई है। जब से साम्प्रदायिकता का जन्म हुआ तभी से ऐसा हो रहा है बल्कि यह कहा जा सकता है कि उच्च वर्ग के स्वार्थों की टकराहट के नतीजे के तौर पर साम्प्रदायिकता का जन्म हुआ है। बिल्कुल प्रारम्भ से इसका उच्च-वर्गीय चरित्र रहा है। साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति पर विचार करना इसके वर्गीय चरित्र की पहचान करने में जरूरी है। अंग्रेजों के आने से पहले की सामन्ती शासन-प्रणाली में शासकों का चुनाव नहीं होता था बल्कि तलवार की ताकत के आधार सत्ता हथियाई जाती थी और जो भी सत्ता पर काबिज होता था वह सभी सम्प्रदायों से वफादारी व सहयोग की अपेक्षा करता था। सरकारी नौकरियां भी उन्हीं को मिलती थी जो राजा के प्रति वफादार होते थे, चाहे कोई किसी भी धर्म से ताल्लुक क्यों न रखता हो। राजा के प्रति वफादारी ही शासन-व्यवस्था में पद पाने का साधन थी। अर्थव्यवस्था में

भी प्रतिस्पर्धा नहीं थी। आम तौर पर अपनी स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादन किया जाता था न कि बाहर के बाजार में बेचने के लिए। अंग्रेजों ने जब भारत की शासन-सत्ता संभाली तो इस व्यवस्था में भारी फेरबदल हुआ। उत्पादन भी प्रतिस्पर्धात्मक हो गया और अपनी स्थानीय जरूरतों के अलावा बाजार में बेचे जाने के लिए होने लगा। अंग्रेजों की औपनिवेशिक व्यवस्था पहले की सामन्ती व्यवस्था से अधिक लोकतान्त्रिक व प्रतिस्पर्धात्मक थी। इस नई व्यवस्था में हिन्दुओं व मुसलमानों के उच्च वर्ग में राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी तथा सरकारी नौकरियां प्राप्त करने की होड़/प्रतिस्पर्धा के कारण ही साम्प्रदायिकता का जन्म हुआ। अंग्रेजों ने अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए हिन्दू व मुस्लिम उच्चवर्ग के हितों की टकराहट को हवा दी, क्योंकि वे 1857 में हिन्दुओं-मुसलमानों की एकता को देख चुके थे। और हिन्दू व मुसलमानों में फूट डालने के लिए यह नीति काम कर गई। स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी सुंदरपाल की 1929 में 'भारत में अंग्रेजी राज' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें अंग्रेजी शासकों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति के तहत साम्प्रदायिकता को प्रसारित करने की मंशा को उनके दस्तावेजों के माध्यम से बताया है। 'इसके कुछ साल बाद एक अंग्रेज अफसर ने लिखा था— 'हमारे राजनैतिक, दीवानी और फौजी तीनों तरह के भारतीय शासन का उसूल, 'फूट फैलाओ और शासन करो' होना चाहिए।'

'... अभी तक हमने साम्प्रदायिक और धार्मिक पक्षपात के द्वारा ही मुल्क को वश में रखा है— हिन्दुओं के खिलाफ मुसलमानों को और उसी तरह अन्य जातियों को एक-दूसरे के खिलाफ।' विप्लव के बाद कर्नल जांन कोक ने, जो इस समय मुरादाबाद की पलटनों का कमांडर था, लिखा कि— 'हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि भिन्न-भिन्न धर्मों और जातियों के लोगों में हमारे सौभाग्य से जो अनैक्य मौजूद है उसे पूरे जोरों में कायम रखा जाए, हमें उन्हें मिलाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। भारत सरकार का उसूल यही होना चाहिए— 'फूट फैलओ और शासन करो।'[5]

1883 में जब वायसराय कार्यकारिणी परिषद् में पहली बार 'स्थानीय स्वशासन बिल' प्रस्तुत किया गया तो मुस्लिम समाज सुधारक सर सैयद अहमदखान ने दो सम्प्रदायों के बीच नगरपालिका में सीटों की संख्या के बंटवारे को लेकर विरोध किया।[6] इस तरह चुनावों के माध्यम से सत्ता में हिस्सेदारी को लेकर हिन्दू व मुसलमानों के उच्चवर्ग में विवाद का जन्म हुआ और धर्म का नाम लेकर निम्न वर्ग को अपने इर्द-गिर्द इकट्ठा करने के लिए यानी अपनी संख्या बढ़ाने के लिए साम्प्रदायिक चेतना का प्रचार शुरू किया और अंग्रेजों ने इसको पूरी हवा दी। ज्यों-ज्यों स्वतन्त्रता-आन्दोलन तेज होता

गया तो सत्ता में हिस्सेदारी प्राप्त करने के लिए उच्चवर्ग भी साम्प्रदायिकता के माध्यम से तेज होता गया। स्वतन्त्रता की संभावना जितनी बढ़ी सत्ता में हिस्सेदारी की स्पर्धा भी सघन हुई जिससे हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष तेज होता गया।

साम्प्रदायिकता के वर्गीय चरित्र को एक अन्य ऐतिहासिक संदर्भ से भी समझा जा सकता है। अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष को लेकर मुसलमानों का निम्न वर्ग-निम्न मध्यवर्ग और उच्चवर्ग व उच्च-मध्यवर्ग परस्पर विरोधी विचार रखते थे। उच्चवर्ग के विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाले सर सैयद अहमद खान ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल होने का विरोध किया जबकि अधिकतर उलेमाओं ने अंग्रेजों का विरोध किया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का साथ दिया। शाह वली उल्लाही स्कूल के उलेमाओं ने कांग्रेस से गठबन्धन किया, देवबन्द के दारूल-उलम के मौलाना रशीद अहमद गंगोही ने मुसलमानों को कांग्रेस से सम्बन्ध स्थापित करने का फतवा जारी किया। बहावियों ने सौ फतवों का संग्रह 'नुसरत-अल-अहरार' (स्वतन्त्रता सेनानियों की मदद) नामक पुस्तक प्रकाशित करके अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने का संकल्प दोहराया।[7]

अंग्रेजों के विरोध या समर्थन के पीछे वर्गीय चरित्र ही काम कर रहा था। अधिकतर उलेमा या तो गांव के गरीब थे या फिर कारीगर वर्ग से सम्बन्धित थे। गौर करने की बात है कि अंग्रेजों की नीतियों ने किसानों को और हस्तशिल्पियों-कारीगरों के आर्थिक आधार को तबाह कर दिया था। मशीन से बने ब्रिटेन के कपड़ों ने भारत के जुलाहों का धंधा बिल्कुल चौपट कर दिया था। इन वर्गों पर अंग्रेजी नीतियों की सबसे अधिक मार पड़ी थी इसीलिए ये वर्ग अंग्रेजी शासन के विरुद्ध पूरी निष्ठा से लड़े। दूसरी तरफ मुस्लिम लीग में या तो उच्च मध्यवर्ग के शिक्षित लोग थे या फिर राजे-रजवाड़े और जमींदार। शिक्षित मध्यवर्ग नौकरी पाने के लिए तथा राजे-रजवाड़ों ने राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी सुनिश्चित करने के लिए अंग्रेजों का साथ दिया। धर्म की आड़ लेकर लोगों को एकत्रित करने की कोशिश की चूंकि मुस्लिम लीग का न तो धर्म से कोई लेना देना था और न ही आम लोगों की तकलीफों से, इसलिए मुस्लिम लीग की पकड़ कभी भी आम मुसलमानों में नहीं हुई और कभी भी उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। विशेषकर बंगाल और पंजाब जैसे राज्यों में जहां मुसलमानों की संख्या अन्य समुदायों से अधिक थी। महान कथाकार मुंशी प्रेमचन्द ने 'साम्प्रदायिकता और संस्कृति' लेख में साम्प्रदायिकता के वर्गीय चरित्र को उद्घाटित किया है कि 'इन संस्थाओं (साम्प्रदायिकता) को जनता के सुख-दुख से कोई मतलब नहीं, उनके पास ऐसा कोई सामाजिक या राजनैतिक कार्यक्रम नहीं है, जिसे राष्ट्र

के सामने रख सकें। उनका काम केवल एक-दूसरे का विरोध करके सरकार के सामने फरियाद करना और इस तरह विदेशी शासन को स्थायी बनाना है। उन्हें किसी हिन्दू या किसी मुस्लिम शासन की अपेक्षा विदेशी शासन कहीं सहज है। वे ओहदों और रिआयतों के लिए एक-दूसरे से चढ़ा-ऊपरी करके जनता पर शासन करने में शासक के सहायक बनने के सिवा और कुछ नहीं करते। मुसलमान अगर शासकों का दामन पकड़कर कुछ रिआयतें पा गया है, तो हिंदू क्यों न सरकार का दामन पकड़े और क्यों न मुसलमान की ही भांति सुर्खरू बन जाए। यही उनकी मनोवृत्ति है। कोई ऐसा काम सोच निकालना, जिससे हिंदू और मुसलमान दोनों एक होकर राष्ट्र का उद्धार कर सकें, उनकी विचार शक्ति से बाहर है। दोनों ही साम्प्रदायिक संस्थाएं मध्यवर्ग के धनिकों, जमींदारों, ओहदेदारों और पद-लोलुपों की है। उनका कार्य क्षेत्र अपने समुदाय के लिए ऐसे अवसर प्राप्त करना है, जिससे वह जनता पर शासन कर सकें, जनता पर आर्थिक और व्यावसायिक प्रभुत्व जमा सकें। साधारण जनता के सुख-दुख से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। अगर सरकार की किसी नीति से जनता को कुछ लाभ होने की आशा है और इन समुदायों को कुछ क्षति पहुँचने का भय है, तो वे तुरंत उसका विरोध करने को तैयार हो जाएंगी। अगर और ज्यादा गहराई तक जाएं, तो हमें इन संस्थाओं में अधिकांश ऐसे सज्जन मिलेंगे जिनका कोई-न-कोई निजी हित लगा हुआ है और कुछ न सही तो हुक्काम के बंगलों पर उनकी रसाई ही सरल हो जाती है।'[8]

स्वतन्त्रता के बाद भी साम्प्रदायिकता हमेशा उच्च-वर्ग के हितों की सेवा करने का औजार रही है। समाज के सामान्य लोगों के दुख-दर्दों से साम्प्रदायिकता का कोई-लेना-देना नहीं है। अपने ही सम्प्रदाय के बीच अशिक्षा, गरीबी, कुपोषण, अंध-विश्वास, बेकारी, भ्रूण-हत्या, स्त्री-विरोधी पुरातन मानसिकता, जाति की अमानवीय प्रथा के प्रति कभी आवाज नहीं उठाई जाती क्योंकि साम्प्रदायिक दृष्टि में ये समस्याएं ही नहीं हैं। साम्प्रदायिकता के लिए गरीबी समस्या नहीं है बल्कि गरीब समस्या हैं, उनकी मैनेजमेंट करना और उनके रोष को उन्हीं के हितों के खिलाफ प्रयोग करना उसकी चिंता हैं, और निहित स्वार्थ इस कुत्सित कार्य को सिद्ध करने के लिए साम्प्रदायिकता के विषैले नाग को अपने पिटारे से निकालते रहते हैं।

संदर्भ

1. गांधी: एक पुनर्विचार; विपन चन्द्रा के लेख,गांधी जी, धर्म निरपेक्षता और साम्प्रदायिकता से; पृ.-69; सहमत, नई दिल्ली; 2004

2. सामाजिक क्रांति के दस्तावेज (भाग-1); शंभुनाथ (सं.), पृ.-292;

वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2004

3. साम्प्रदायिकता: एक परिचय; विपिन चन्द्रा पृ.-7; अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली; 2004

4. साम्प्रदायिकता: एक परिचय; विपिन चन्द्रा; पृ.-8; अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली; 2004

5. सामाजिक क्रांति के दस्तावेज (भाग-1); शंभुनाथ (सं.); पृ.-292; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2004

6. भारत में साम्प्रदायिकता: इतिहास और अनुभव; असगर अली इंजीनियर; पृ.-47; इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद; 2003

7. भारत में साम्प्रदायिकता: इतिहास और अनुभव; असगर अली इंजीनियर; पृ.-58; इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद; 2003

8. जातीयता, जातिवाद और साम्प्रदायिकता; वासुदेव शर्मा (सं.); पृ.-46; लोकजतन प्रकाशन, भोपाल; 2004

धर्म और साम्प्रदायिकता

आधुनिक भारत पर साम्प्रदायिकता की काली छाया लगातार मंडराती रही है। साम्प्रदायिकता के कारण भारत का विभाजन हुआ और अब तक साम्प्रदायिक हिंसा में हजारों लोगों की जानें जा चुकी हैं और लाखों के घर उजड़े हैं, लाखों लोग विस्थापित होकर शरणार्थी का जीवन जीने पर मजबूर हुए हैं। साम्प्रदायिकता से समाज को छुटकारा दिलाना हर संवेदनशील व देशभक्त व्यक्ति का कर्तव्य है। साम्प्रदायिकता के साथ धर्म जुड़ा रहता है, जिस कारण साम्प्रदायिकता की समस्या का समाधान चाहने वाले लोग कई बार इस नतीजे पर पहुंच जाते हैं कि साम्प्रदायिकता की जड़ धर्म में है। साम्प्रदायिकता का धर्म से गहरा ताल्लुक होते हुए भी धर्म उसकी उत्पत्ति का कारण नहीं है। इसलिए धर्म और साम्प्रदायिकता के अन्त:सम्बन्धों को समझना निहायत जरूरी है।

धर्म का क्षेत्र और साम्प्रदायिकता का क्षेत्र बिल्कुल भिन्न है। धर्म में ईश्वर का, परलोक का, स्वर्ग-नरक का, पुनर्जन्म का, आत्मा-परमात्मा का विचार होता है। सच्चे धार्मिक का और धर्म का सारा ध्यान पारलौकिक आध्यात्मिक जगत से संबंधित होता है, धर्म में भौतिक जगत की कोई जगह नहीं होती जबकि इसके विपरीत साम्प्रदायिकता का अध्यात्म से कुछ भी लेना-देना नहीं है और साम्प्रदायिक लोग अपने भौतिक स्वार्थों जैसे राजनीति, सत्ता, व्यापार आदि की चिन्ता अधिक करते हैं।

किसी समाज में विभिन्न धर्मों के होने मात्र से ही साम्प्रदायिकता पैदा नहीं होती। साम्प्रदायिकता स्वत: स्फूर्त परिघटना नहीं होती बल्कि साम्प्रदायिक उन्माद पैदा करने के लिए साम्प्रदायिक शक्तियां वातावरण का निर्माण करती हैं, एक-दूसरे समुदाय के बारे भ्रम फैलाते हैं और एक-दूसरे के विरुद्ध नफरत फैलाते हैं। भारत में बहुत से धर्मों के लोग रहते हैं, भिन्न-भिन्न धर्मों के होना साम्प्रदायिकता नहीं है। लोगों के, समुदायों के धार्मिक हित कभी नहीं टकराते इसलिए उनमें कोई हिंसा-तनाव होने का सवाल ही नहीं उठता। कुछ लोगों के सांसारिक हित (सत्ता-व्यापार) टकराते हैं तो वे अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए इस बात का धुंआधार प्रचार करते हैं कि एक धर्म के मानने वाले लोगों के हित समान हैं और भिन्न-भिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों के हित परस्पर विपरीत एवं विरोधी हैं। बस यहीं से साम्प्रदायिकता की शुरूआत

होती है। साम्प्रदायिकता को फैलाने वाले स्वार्थी लोग इतने चालाकी से इस काम को करते हैं कि लोग उन कुछ लोगों के हितों को अपने हित मानने की भूल कर बैठते हैं। उन स्वार्थी-साम्प्रदायिक लोगों के भौतिक स्वार्थ लोगों को अपने आध्यात्मिक हित नजर आएं, इसके लिए वे धर्म का सहारा लेते हैं। चूंकि धर्म से लोगों का भावनात्मक लगाव होता है, लोगों की आस्था जुड़ी होती है इसलिए इसका सहारा लेकर उनको आसानी से एकत्रित किया जा सकता है। लोगों की आस्था व विश्वास को साम्प्रदायिकता में बदलकर, दूसरे धर्म के लोगों के खिलाफ प्रयोग करके स्वार्थी-साम्प्रदायिक लोग अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं।

धर्म और साम्प्रदायिकता न केवल भिन्न हैं, बल्कि परस्पर विरोधी हैं। साम्प्रदायिक व्यक्ति कभी धार्मिक नहीं होता, लेकिन वह धार्मिक होने का ढोंग अवश्य करता है। साम्प्रदायिक व्यक्ति की धार्मिक आस्था तो होती नहीं इसलिए वह ऐसे कर्मकाण्ड करता है जिससे कि बहुत बड़ा धार्मिक दिखाई दे। मंदिरों-मस्जिदों के लिए अत्यधिक धन जुटाएगा, कथाओं-कीर्तनों का आयोजन करेगा। धार्मिक सभाएं-जुलूस आयोजित करेगा ताकि वह सबसे बड़ा धार्मिक और धर्म की सेवा करने वाला नजर आए। अपने धर्म के मूल्यों से, धर्म की शिक्षाओं से उसका कोई लेना-देना नहीं होता। साम्प्रदायिक लोग साम्प्रदायिक-दंगे आयोजित करके— हिंसा, आगजनी, लूट-खसोट, बलात्कार आदि अपराध करते हैं, जबकि उनका धर्म उन कुकृत्यों की कोई इजाजत नहीं देता। ये काम कोई धर्म-सम्मत काम नहीं है बल्कि धर्म के विरोधी हैं लेकिन स्वार्थी साम्प्रदायिक लोग इसको धर्म की आड़ में बेशर्मी से करते हैं। साम्प्रदायिक हिन्दू हिंसा करके धर्म की उदारता और सहिष्णुता को समाप्त करते हैं तो साम्प्रदायिक मुस्लिम इस्लाम यानी शान्ति के संदेश का अपमान करते हैं। साम्प्रदायिक हिन्दू और साम्प्रदायिक मुसलमान या अन्य धर्म का साम्प्रदायिक व्यक्ति दूसरे धर्म के लोगों को तो नुक्सान पहुंचाकर मानवता को नुक्सान पहुंचाता ही है, इसके साथ वह सबसे पहले अपने धर्म का और उसको मानने वाले लोगों को नुकसान पहुंचाता है। कट्टर या साम्प्रदायिक व्यक्ति की शत्रुता दूसरे धर्म के कट्टर और साम्प्रदायिक व्यक्ति से नहीं होती बल्कि अपने ही धर्म को मानने वाले उदार व्यक्ति और सच्चे धार्मिक से होती है। कट्टर व साम्प्रदायिक लोगों की दोस्ती उसी तरह होती है जिस तरह कहावत है कि 'चोर-चोर मौसेरे भाई' इसलिए वे उदार लोगों के लिए अपमानजनक मुहावरे और वाक्य प्रयोग करते हैं जैसे— कायर, गद्दार, नपुसंक, धर्म-द्रोही आदि।

सच्चा धार्मिक या सच्चे अर्थों में धर्म को मानने वाला कभी साम्प्रदायिक

नहीं हो सकता और साम्प्रदायिक व्यक्ति कभी धार्मिक हो ही नहीं सकता। यदि कोई धर्म में, ईश्वर में या खुदा में विश्वास करता है और मानता है कि यह सृष्टि ईश्वर/ खुदा की रचना है तो उसे सबको मान्यता देनी चाहिए। यदि उसकी ईश्वर/खुदा की सत्ता में जरा भी आस्था है तो वह सभी लोगों को उसकी संतान समझेगा और समान समझेगा इसके विपरीत जो धर्म में और धार्मिक विश्वासों में आस्था के विपरीत स्वार्थों से घिरा है तो वह सबको समान नहीं समझेगा और वह अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए साम्प्रदायिकता के विचार को ग्रहण करेगा। साम्प्रदायिक व्यक्ति किसी दूसरे सम्प्रदाय क्या अपने सम्प्रदाय में भी समानता-बराबरी-भाईचारे के विपरीत होगा और अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए असमानता की विचारधारा को अपनाएगा। इस बात को एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान एक तरफ महात्मा गांधी थे जो स्वयं को सनातनी हिन्दू कहते थे, जनेऊ धारण करते थे। प्रार्थना सभाएं करते थे, 'रघुपति राघव राजा राम' की आरती गाते थे। हिन्दू रिवाजों-मान्यताओं में विश्वास जताते थे, ईश्वर में विश्वास करते थे, हिन्दू-ग्रन्थों का आदर करते थे। लेकिन महात्मा गांधी साम्प्रदायिक नहीं थे, सभी धर्मों का और उनके मानने वालों का आदर करते थे। उन्होंनें धर्म के आधार पर राष्ट्र बनाने का विरोध किया। इस आदर्श के लिए उन्होंने अपनी जान भी दे दी। धर्म-निरपेक्ष राज्य के पक्के समर्थक थे, धर्म को व्यक्ति का निजी (personal) मामला मानते थे। दूसरी तरफ इसके विपरीत वीर सावरकर थे जिनकी हिन्दू धर्म में, इसके रीति-रिवाजों, विश्वासों-मान्यताओं में आस्था नहीं थी बल्कि उनका ईश्वर में भी विश्वास नहीं था, लेकिन उनको धर्म के आधार पर 'हिन्दू-राष्ट्र' चाहिए था। उन्होंने धर्म के आधार पर 'हिन्दू महासभा' का गठन किया; उनको धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र स्वीकार नहीं था जबकि धर्म से उनका कोई सरोकार नहीं था।

इसी तरह मुसलमानों में देखा जा सकता है। एक तरफ मौलाना अबुल कलाम आजाद थे जो इस्लाम की मान्यताओं में विश्वास रखते थे, कुरान पर चार-भागों में टीका लिखी, जो पांचों समय नमाज पढ़ते थे और नियमित रूप से मस्जिद जाते थे लेकिन वे धर्म को निजी मामला समझते थे। धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र में विश्वास करते थे। धर्म के आधार पर 'पाकिस्तान' की मांग करने वालों का मुखर विरोध किया। आजाद ने कहा कि मैं मुसलमान हूं, और गर्व के साथ अनुभव करता हूं कि मुसलमान हूं। इस्लाम की तेरह सौ बरस की शानदार रिवायतें मेरी पैतृक संपति हैं। मैं तैयार नहीं हूँ कि इसका कोई छोटे-से-छोटे हिस्सा भी नष्ट दूं। इस्लाम की तालीम, इस्लाम का इतिहास, इस्लाम

का इल्म और फन, और इस्लाम की तहजीब मेरी पूंजी है और मेरा फर्ज है कि उसकी रक्षा करूं। मुसलमान होने की हैसियत से मैं अपने मजहबी और कलचरल दायरे में अपना एक खास अस्तित्व रखता हूं और मैं बरदाश्त नहीं कर सकता कि इसमें कोई हस्तक्षेप करे। किंतु इन तमाम भावनाओं के अलावा मेरे अंदर एक और भावना भी है, जिसे मेरी जिंदगी की 'रिएलिटीज' यानी हकीकतों ने पैदा किया है। इस्लाम की आत्मा मुझे उससे नहीं रोकती, बल्कि मेरा मार्ग-प्रदर्शन करती हैं। मैं अभिमान के साथ अनुभव करता हूं कि 'मैं हिंदुस्तानी हूं। मैं हिंदुस्तान की अभिन्न संयुक्त-राष्ट्रीयता नाकाबिले तक्सीम मुत्ताहिदा कौमियत का एक अंश हूं। मैं इस संयुक्त-राष्ट्रीयता का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण अंश हूं, उसका एक ऐसा टुकड़ा हूं जिसके बिना उसका महत्त्व अधूरा रह जाता है। मैं इसकी बनावट का एक जरूरी हिस्सा हूं। मैं अपने इस दावे से कभी दस्तबरदार नहीं हो सकता।'[1]

दूसरी ओर इसके विपरीत मुहम्मद अली जिन्ना थे, जिनका नमाज और मस्जिद से कोई लेना-देना नहीं था। जिनका इस्लाम में, इस्लाम की मान्यताओं में कोई विश्वास नहीं था। मसलन शराब और सुअर का मांस इस्लाम में हराम माने गए हैं जबकि जिन्ना का नाश्ता सुअर के मांस और रात का भोजन शराब (स्काच) के बिना नहीं होता था। आचार-विचार से, वेश-भूषा से, विश्वास-व्यवहार से कहीं से भी जिन्ना इस्लाम धर्म के निकट नहीं थे, लेकिन उन्होंने धर्म के आधार पर अलग राष्ट्र की मांग की और फलस्वरूप पाकिस्तान का निर्माण हुआ। महात्मा गांधी व मौलाना अबुल कलाम आजाद सच्चे अर्थों में धार्मिक थे लेकिन इसके विपरीत जिन्ना या सावरकर का धर्म से व धार्मिकता से कोई वास्ता नहीं था। जिन्ना की मुस्लिम लीग और मौलाना अबुल कलाम आजाद में हमेशा छत्तीस का आंकड़ा रहा और महात्मा गांधी तो वीर सावरकर के राजनीतिक शिष्य की ही गोली का शिकार हुए। इसके विपरीत जिन्ना और सावरकर में गहरी समानताएं हैं जैसे दोस्तों में होती हैं। दोनों की विचारधारा धर्म के मामले में एक जैसी थी, दोनों धर्म के आधार पर राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। दोनों 'द्वि-राष्ट्र' के सिद्धांत के समर्थक थे।

यद्यपि यह बात सही है कि साम्प्रदायिकता का मूल कारण धर्म नहीं है लेकिन साथ ही यह बात भी सच है कि धर्म का प्रयोग करके ही साम्प्रदायिक शक्तियां फलती-फूलती हैं। आधुनिक भारत के चिन्तक व समाज सुधारक राजाराम मोहन राय ने धर्म के नाम पर किए जाने वाले कुकृत्यों को उचित ठहराने के बारे में सही ही कहा है कि 'इन धार्मिक नेताओं ने अधिकतर लोगों को अपने आकर्षण में इस तरह जकड़ लिया है कि ये असहाय लोग वस्तुत: बाध्यता और दासता के बंधन में हैं, यह अपनी दृष्टि और अपना हृदय

पूर्णरूपेण खो चुके हैं। इसीलिए इन नेताओं के आदेश का पालन करते समय वे अपने वास्तविक मंगल और पाप में भेद करना तक अपराध समझते हैं। यद्यपि मनुष्य होने के नाते वे मूलत: एक ही वृक्ष की भिन्न-भिन्न शाखाएं हैं तथापि केवल अपने मतवाद को स्थापित करने के लिए और साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित होकर वे एक-दूसरे की हत्या करना अथवा अत्याचार करना एक विशेष पुण्य का कार्य मानते हैं। मिथ्याचार, चोरी, डकैती, व्यभिचार आदि निकृष्टतम दुष्कार्य जो कि आत्मा के लिए अमंगलकारी एवं साधारण मानव के लिए भी अहितकारी हैं, ऐसे पापकर्मों से वे वे.ाल इसलिए नहीं हिचकते कि उन्हें विश्वास है कि उनके धार्मिक नेता उन्हें पाप से मुक्ति दिला देंगे मनुष्य अपना अमूल्य समय ऐसी पुराण कथाओं के पाठ में व्यतीत करता है, जिन पर विश्वास करना असंभव लगता है। परंतु इन्हीं कथाओं से प्राचीन और नए धार्मिक नेताओं पर उनका विश्वास मानो और अधिक दृढ़ होता है।'[2] धर्म के प्रतीकों और धर्म के विश्वासों के सहारे ही साम्प्रदायिकता की विष-बेल फैलती है। स्वतन्त्रता पूर्व समय में 1938 तक मुस्लिम लीग का आधार नहीं बढ़ा। जमींदारों और कुछ उच्च-मध्यवर्ग तक ही साम्प्रदायिक चेतना का प्रसार-प्रभाव था, लेकिन जब जिन्ना ने 1938 के बाद धार्मिक प्रतीकों का सहारा लिया, मुल्ला-मौलवियों का तथा धार्मिक स्थलों का सहारा लिया तो उसका आधार बढ़ा और अपने आक्रामक प्रचार से लोगों की चेतना में यह बात डाल दी कि मुसलमानों के लिए अलग देश बने बिना न तो इस्लाम सुरक्षित है और न ही इस्लाम को मानने वाले।

इसी तरह आजादी के कुछ समय बाद तक साम्प्रदायिकता हाशिये पर ही रही जनसंघ को 'बनियों' की पार्टी के तौर पर जाना गया और इसकी ताकत कम ही रही लेकिन ज्यों ही धार्मिक भावनाओं से जुड़े मुद्दे उठाएं, धार्मिक प्रतीकों को उठाया तो इसका आकार तेजी से बढ़ता गया और एक राजनीतिक ताकत बनकर उभरी। गौ-रक्षा के बाद, राम-जन्म भूमि के विवाद को उठाया, अखाड़ों के महंतों, मंदिरों के पुजारियों, पौराणिक कथावाचकों का, धार्मिक स्थलों का सहारा लिया और इनको अपने प्रचार में जोड़ लिया तो एक बड़ी राजनीतिक शक्ति बन गई। धर्म से जुड़े प्रतीक और विश्वास साम्प्रदायिकता को आधार प्रदान करते हैं। साम्प्रदायिक शक्तियां वातावरण को इतना उन्मादी व विषैला बना देती हैं कि व्यक्ति की धार्मिक चेतना साम्प्रदायिक चेतना में तब्दील हो जाती है। साम्प्रदायिक शक्तियों ने 'राम मंदिर-बाबरी मस्जिद' विवाद को इस तरह से उठाया कि राम को अपना आराध्य मानने वाले आम लोगों, घरेलू स्त्रियों की राम के प्रति श्रद्धा व धार्मिक आस्था 'राम मंदिर' से जोड़ दी। 'राम शिला पूजन' आदि के माध्यम से इससे

जुड़ गए, जबकि वे आम जीवन में साम्प्रदायिक नहीं थे। पंजाब में आर्य समाज आन्दोलन की शुरूआत एक धार्मिक सुधार आन्दोलन के रूप में हुई थी, लेकिन वह साम्प्रदायिक आन्दोलन बन गया। अलीगढ में मुस्लिम आंदोलन एक सुधारवादी आन्दोलन था, लेकिन अन्ततः वह साम्प्रदायिक आन्दोलन में बदल गया।

आखिर लोग यही कहते हैं कि अपने-अपने धर्म का पालन सख्ती से करें तो साम्प्रदायिक समस्या उत्पन्न नहीं हो सकती। एक अच्छा या पक्का हिन्दू और अच्छा या पक्का मुसलमान होना बेहतर है। 'अच्छे' या 'पक्के' का अर्थ लिया जाता है जो धर्म के कर्मकांडों को, पूजा-विधानों को, व दार्शनिकता को मानता है। यानी कट्टर धार्मिकता और रूढ़िवाद। कट्टर धार्मिक व साम्प्रदायिक में यह अन्तर होता है कि कट्टर धार्मिक व्यक्ति अपने ही धर्म के लोगों को अपना निशाना बनाता है कि वे अपने धर्म की सख्ती से पालन करें और साम्प्रदायिक व्यक्ति दूसरे धर्म के लोगों को अपने निशाने पर रखता है। धार्मिक कट्टरता भी उतनी ही खराब है जितनी कि साम्प्रदायिकता। यह भी कहा जा सकता है कि दोनों एक दूसरे को बढ़ावा देते हैं। कट्टर धार्मिकता व रूढ़िवादिता अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानती है व अपने अतीत को महामंडित करती है व दूसरे धर्म के लोगों को अपना शत्रु भी घोषित करती है। यही साम्प्रदायिकता की विचारधारा के बीज रूप में काम करती है और धार्मिक कट्टरता साम्प्रदायिकता की खुराक बन जाती है। हिन्दुओं में 'धर्मयुद्ध' मुसलमानों में 'जिहाद' तथा ईसाइयों में 'क्रूसेड' कभी साम्प्रदायिकता में बदल जाता है तो कभी आतंकवाद में। धर्म की रक्षा के नाम पर कट्टर व्यक्ति कुछ भी कर गुजरता है। धार्मिक कट्टरता व्यक्ति को संकीर्ण व अवैज्ञानिक बना देती है।

साम्प्रदायिक शक्तियां बड़ी चालाकी से धर्म में निहित संकीर्णता, अंधविश्वास, भाग्यवाद और अतार्किकता का लाभ उठाती हैं। लेकिन ध्यान देने योग्य बात है कि साम्प्रदायिक लोग स्वयं धार्मिक रूढ़ियों को नहीं मानते, ठीक उसी तरह जिस तरह वे धर्म से जुड़े मानवीय मूल्यों और शिक्षाओं को नहीं मानते। साम्प्रदायिक शक्तियां अत्याधुनिक तरीकों व तकनीक का प्रयोग करती हैं। धार्मिक ग्रन्थों व शास्त्रें की दुहाई भी देते हैं और अपने उपदेशों, सभाओं, भाषणों में उनके पालन का आग्रह भी करते हैं। मसलन साम्प्रदायिक हिन्दू मनु द्वारा दी गई वर्णाश्रम-व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था मानता है। आश्रम-व्यवस्था के अनुसार आज न तो कोई संन्यास लेता है और न ही ब्रह्मचारी रहता है। इसी तरह साम्प्रदायिक मुसलमान का व्यवहार शरीअत के अनुसार नहीं होता। हां शास्त्रों को— ग्रन्थों को, रूढ़ियों-पुरातन विश्वासों को

आम लोगों पर बदले की कार्रवाई की तरह प्रयोग किया जाता है। सभी धर्म की सेवा करने वाले उग्रपंथी चाहे सिक्ख हों, हिन्दू या मुसलमान सबसे पहले स्त्रियों की आजादी छीनते हैं, उनकी व्यक्तिगत पसंद-नापसंद को समाप्त करते हैं, उन पर आचार-संहिता थोंपते हैं। साम्प्रदायिक शक्तियां स्वयं चाहें रूढ़िवादी न हों लेकिन समाज को रूढ़ियों से जकड़ने की कोशिश करती हैं। इसका एक काफी दिलचस्प उदाहरण है 'शिव सेना' (राजनीतिक पार्टी) स्वयं को हिन्दुओं के हितों की रक्षक घोषित करती है लेकिन इसकी कलई तभी खुल जाती है जब कोई भी मुद्दा आता है जैसे कि रेलवे में भर्ती के लिए उन्होंने कहा कि यह सिर्फ महाराष्ट्र के लिए है और दूसरे प्रान्त के लोगों को शिव सेना के गुण्डों ने पीट-पीट कर भगा दिया। यदि 'शिव सेना' से पूछा जाए कि क्या महाराष्ट्र के बाहर के हिन्दुओं के प्रति उनका व्यवहार धार्मिक है? इसी तरह 'शिव सेना' 'वेलेन्टाइन डे' पर लड़के-लड़कियों के जोड़ों के मुंह पर कालिख पोत देती है, स्त्रियों के लिए 'ड्रेस कोड़' का आह्वान करती है, लेकिन दूसरी तरफ माइकल जैक्शन को बुलाकर 'सांस्कृतिक' कार्यक्रम भी करवाती है। साम्प्रदायिक शक्तियों की जीत असल में इसी में होती है कि लोग वैसा ही मानते जाएं जैसा वे कहते जाएं। आजादी, उन्मुक्तता व बराबरी का रिश्ता-रिवाज उनकी सारी विचारधारा को खतरा नजर आता है।

साम्प्रदायिक शक्तियां व्यक्ति की धार्मिक पहचान पर जोर देती हैं और धार्मिक पहचान को अन्य सभी पहचानों से महत्त्वपूर्ण मानती हैं, जबकि व्यक्ति की कई पहचान होती हैं। यह भी सही है कि धार्मिक पहचान तभी हावी होती है, जबकि अपनी अन्य पहचानों से व्यक्ति का भावनात्मक लगाव-जुड़ाव न हो। इस बात को ऐसे समझा जा सकता है कि एक व्यक्ति हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन, ब्राह्मण, जाट, महार भी होता है, तो वह मजदूर, किसान, कारीगर, व्यापारी, अधिकारी, शिक्षक, राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्त्ता, बेरोजगार भी होता है और उसी समय में वह स्त्री या पुरूष भी होता है। यदि कोई श्रमिक-कर्मचारी अपने ट्रेड-यूनियन संगठनों से लगाव-जुड़ाव रखता है तो वह अपनी पहचान भी उसी आधार पर बनाता है, इसके विपरीत संगठन कमजोर हैं या व्यक्ति जुड़ाव नहीं रखता तो वह अपनी पहचान बदलता रहता है। कार्य-स्थल पर वह कर्मचारी-श्रमिक की पहचान रखता है, अपने समाज-परिवार में जाकर वह जातिवादी, पुरुषवादी या साम्प्रदायिक कुछ भी हो सकता है। व्यक्ति की धार्मिक पहचान को मजबूत करने के लिए साम्प्रदायिक शक्तियां इसीलिए तरह तरह के कीर्तन, संत्संग, धार्मिक यात्रएं आयोजित करती हैं, क्योंकि धार्मिक पहचान को साम्प्रदायिकता में बदलना आसान होता है।

लोगों की धार्मिक भावनाओं का इस्तेमाल करने के लिए साम्प्रदायिकता धर्म की विकृत व्याख्या करती है। बाहरी आडम्बर व कर्मकाण्डों को ही धर्म के रूप में स्थापित करती है। धर्म को उसकी नैतिक व मानवीय शिक्षाओं से अलग करके नमाज पढ़ना, दाढ़ी-चोटी रखना, जनेऊ-तिलक धारण करना या अन्य धार्मिक पहचान के चिन्हों को ही धर्म मान लेती है। यदि धर्म को व्यक्ति के आचरण से पहचानकर मात्र रामनामी चादर ओढ़ने या गेरूए रंग के पटके डालने और लम्बा तिलक लगाने जैसे बाहरी कर्मकाण्डों को ही धर्म के रूप में स्थापित कर दिया जाए तो धर्म के नाम पर किए जाने वाले कुकृत्यों व आपराधिक कार्यों को भी धार्मिक कार्यों की परिधि में आसानी से लाया जा सकता है। पाखण्डी बाबाओं द्वारा भोली-भाली लड़कियों का यौन-शोषण जैसा जघन्य कृत्य भी लोग धार्मिक समझकर सहन कर लेते हैं। अपराधिक कार्यों में लिप्त कथित बाबाओं, संन्यासियों-आतंकियों को भी धर्म में सहारा मिल जाता है। असल में तो धर्म कुछ मूल्यों-आदर्शों के समुच्चय का नाम है, जिनको कि व्यक्ति को धारण करना होता है। व्यक्ति की धार्मिक पहचान को बढावा देने के लिए ही धर्म को जीवन -शैली कहा जाता है, क्योंकि शैली तो बाहरी होती है और मूल्य व आदर्शों को आचरण में ढालना होता है।

साम्प्रदायिकता न तो धार्मिक कारणों से पैदा होती है और न वह धार्मिक समस्याओं को उठाती है इसलिए साम्प्रदायिकता का समाधान धार्मिक आधार पर नहीं हो सकता। हिन्दू साम्प्रदायिकता और मुस्लिम साम्प्रदायिकता की लड़ाई हिन्दू-धर्म और इस्लाम-धर्म की लड़ाई नहीं है, बल्कि यह कुछ वर्गों के राजनीतिक हितों की टकराहट है, इसलिए इसका समाधान भी राजनीतिक पहलकदमी में है। धर्म की आड़ में छुपी राजनीति और राजनीतिक हितों की कलई खोलकर ही इससे मुकाबला किया जा सकता है। स्वतन्त्रता से पहले मुस्लिम लीग साम्प्रदायिकता की राजनीति करती थी, लेकिन उसकी एक भी मांग धार्मिक नहीं थी। मुस्लिम लीग के 14 सूत्री मांग-पत्र का इस्लाम से कोई लेना देना नहीं था। सारी मांगें राजनीतिक थी। इसी तरह स्वतन्त्रता के बाद आर.एस.एस. साम्प्रदायिकता का चैंपियन है। सारी राजनीति धर्म की आड़ लेकर की जाती है अपने संगठन का राजनीतिक चरित्र भी छिपाया जाता है। लोगों में स्वीकार्यता बढ़ाने के लिए सांस्कृतिक संगठन की छवि बनाई जाती है, जबकि होती है शुद्ध सत्ता हथियाने की राजनीति। कोई संगठन अपने को सांस्कृतिक संगठन कैसे कह सकता है यदि उसका पहला मकसद ही राजनीतिक हों यानी 'हिन्दू राष्ट्र' बनाना। यदि किसी राष्ट्र का चरित्र निर्धारण करने के काम को भी अराजनीतिक श्रेणी में रखा जाएगा तो राजनीतिक कार्य किसको कहा जाएगा। 'विश्व हिन्दू परिषद्' ने कभी भी मन्दिरों में सुधारों के

लिए कोई अभियान नहीं चलाया इसके नेता विष्णुहरि डालमिया, अशोक सिंघल, प्रवीण तोगड़िया न तो संत हैं और न ही उनकी कोई धार्मिक आस्था है बल्कि वे राजनीतिक व्यक्ति हैं जो विशेष वर्गों (शोषक) के राजनीतिक हितों को साध रहे हैं।

शहीद भगतसिंह ने 'धर्म और हमारा स्वतन्त्रता-संग्राम'[3] लेख में धर्म और साम्प्रदायिकता पर विचार प्रकट करते हुए दोनों में स्पष्ट अन्तर किया है। उन्होंने लिखा कि रूसी महात्मा टालस्टॉय ने अपनी पुस्तक (एसे एंड लेटर्स) में धर्म पर बहस करते हुए उसके तीन हिस्से किये हैं—

1. एसेन्शियल ऑफ रेलिजन— यानी धर्म की जरूरी बातें अर्थात सच बोलना, चोरी न करना, गरीबों की सहायता करना, प्यार से रहना वगैरह।

2. फिलासफी ऑफ रेलिजन— यानी जन्म-मृत्यु, पुनर्जन्म, संसार-रचना आदि का दर्शन। इसमें आदमी अपनी मर्जी के अनुसार सोचने और समझने का यत्न करता है।

3. रिचुअल्स ऑफ रेलिजन— यानी रस्मो-रिवाज वगैरह।

सो यदि धर्म पीछे लिखी तीसरी और दूसरी बात के साथ अन्धविश्वास को मिलाने का नाम है, तो धर्म की कोई जरूरत नहीं। इसे आज ही उड़ा देना चाहिए। यदि पहली और दूसरी बात में स्वतन्त्र विचार मिलाकर धर्म बनता हो, तो धर्म मुबारक है।'

इस तरह कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति का कारण धर्म नहीं है और न ही अनेक धर्मों के लोगों का साथ रहना , बल्कि इसका कारण वर्ग विशेष के निहित स्वार्थ हैं। यदि धर्म और धार्मिक आस्थाएं इसका कारण होतीं तो साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति आधुनिक युग में न होती बल्कि इसकी उत्पत्ति काफी पहले हो गई होती क्योंकि आधुनिक युग के मुकाबले पहले लोगों की धार्मिक आस्थाएं अधिक पुख्ता थीं, जबकि आधुनिक काल में धार्मिक आस्थाओं पर प्रश्नचिह्न लगा है। दिलचस्प बात यह है कि साम्प्रदायिकता की शुरूआत भी आधुनिक काल में हुई और इसको आगे बढ़ाने वाले मंदिरों-मस्जिदों-गुरुद्वारों-गिरिजाघरों में बैठे पुजारी-महंत नहीं थे, बल्कि राजनीति के क्षेत्र में काम करने वाले लोग थे। स्वतंत्रता पूर्व के काल में राजनीतिक लोगों ने साम्प्रदायिकता को धर्म की आड़ लेकर आगे बढ़ाया और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद विशेषकर 1980 के बाद राजनीतिक लोगों ने धार्मिक आडम्बर का चोला धारण करके राजनीतिक लाभ उठाया। इस तरह स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकता एक राजनीतिक विचारधारा है जो सत्ताधारी वर्ग के हितों की रक्षा के लिए काम करती है, लेकिन यह धर्म का आवरण ओढ़कर या धर्म की आड़ लेकर ऐसा करती है और लोगों की धार्मिक भावनाओं से इसमें ईंधन का काम लिया जाता है।

संदर्भ

1. सामाजिक क्रांति के दस्तावेज (भाग-1); शंभुनाथ (सं.), पृ.-329; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2004

2. सामाजिक क्रांति के दस्तावेज (भाग-1); शंभुनाथ (सं.); पृ.-59; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2004

3. मेरी कलम से; भगत सिंह (सं. डॉ. सुभाष चन्द्र); पृ.-13; शहीद भगत सिंह अध्ययन केन्द्र, नरवाना (हरियाणा); 2005

संस्कृति और साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता अपने को संस्कृति के रक्षक के तौर पर प्रस्तुत करती है, जबकि वास्तव में वह संस्कृति को नष्ट कर रही होती है। साम्प्रदायिक लोग अपने को सांस्कृतिक पुरूष, अपनी राजनीति को संस्कृति के रूप में पेश करते हैं। वे संस्कृति की शुद्धता व सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की लफ्फाजी के लिए प्रख्यात हैं। हिन्दी के महान रचनाकार मुन्शी प्रेमचन्द ने कहा था कि 'साम्प्रदायिकता हमेशा संस्कृति का लबादा ओढ़कर आती है क्योंकि उसे अपने असली रूप में आते हुए लज्जा आती है।'[1] सांस्कृतिक श्रेष्ठता, दम्भ व जातीय गौरव साम्प्रदायिकता के साथ आरम्भ से जुड़े हैं। साम्प्रदायिकता के असली चरित्र को समझने के लिए उसके सांस्कृतिक लबादे को, उसके खोल को समझना और इस खोल के साथ उसके संबंधों को समझना निहायत जरूरी है। संस्कृति में लोगों के रहन-सहन, खान-पान, मनोरंजन, रुचियां- स्वभाव, गीत-नृत्य, सोच-विचार, आदर्श-मूल्य, भाषा-बोली सब कुछ शामिल होता है। मानव-समाज जो जीवन में जीता है उस सबको मिलाकर ही संस्कृति बनती है।

किसी क्षेत्र विशेष के लोगों की संस्कृति विशिष्ट होती है चूंकि जलवायु व भौतिक परिस्थितियां बदल जाती हैं, भाषा-बोली बदल जाती है, खान-पान, व रहन-सहन बदल जाता है जिस कारण एक अलग संस्कृति की पहचान बनती है। इस तरह कहा जा सकता है कि संस्कृति का सम्बन्ध भौगोलिक क्षेत्र से होता है और संस्कृति की पहचान भाषा से होती है। मनुष्य के खान-पान व रहन-सहन के तौर तरीके काफी कुछ क्षेत्र विशेष की जलवायु पर निर्भर करते हैं। यहां तक कि रीति-रिवाज व पूजा-उपासना के ढंग भी इसी से प्रभावित होते हैं। पहाड़ों पर रहने वाले, मरुस्थल में रहने वाले, समुद्र के किनारे रहने वाले, सदा बरसात होने वाले क्षेत्रों में रहने वाले तथा समतल में रहने वाले लोगों का खान-पान, रहन-सहन एक जैसा नहीं हो सकता। यानी उनकी संस्कृति एक जैसी नहीं हो सकती। धर्म और धार्मिक कहे जाने वाले कार्य भी जलवायु की भिन्नता के कारण बदल जाते हैं। जैसे कहा जाता है कि स्नान करके पूजा करनी चाहिए तो जहां मरुस्थल में पानी की कमी है या जहां फिर बर्फ ही बर्फ पड़ती है वहां यह नियम लागू नहीं हो सकता। जलवायु के

कारण परिस्थितियां अलग-अलग हैं। इसलिए संस्कृति भी और सांस्कृतिक विश्वास, मान्यताएं व धारणाएं भी अलग अलग होंगी। जो लोग समुद्र के पास रहते हैं और जिनके पास खाने के लिए मुख्य रूप से मछली ही है, वहां मांस खाने को निषिद्ध करना या फिर मांसाहारी को निकृष्ट मानना व शाकाहारी को श्रेष्ठ मानना अनुकूल नहीं होगा। मरुस्थल क्षेत्रों में जहां लकड़ी की कमी होती है, वहां शव को जलाने के बजाए दफनाया जाएगा। संस्कृति का निर्माण क्षेत्र विशेष की परिस्थिति व जलवायु पर निर्भर करता है। जब किसी संस्कृति को श्रेष्ठ या निकृष्ट माना जाता है, वहीं से अवैज्ञानिक सोच की शुरूआत हो जाती है और साम्प्रदायिक सोच में बदलने की गुंजाइश बनी रहती है। अपनी संस्कृति की मान्यताओं व विश्वासों को दूसरों के मुकाबले में श्रेष्ठ व सर्वोच्च मानना व यह सोचना कि दूसरे भी इसको अपनाएं व उन पर इसे लागू करने की कोशिश करना साम्प्रदायिक सोच को अपनाना है। इसीलिए साम्प्रदायिक शक्तियां हमेशा सांस्कृतिक श्रेष्ठता का अहसास व उन्माद पैदा करती हैं। हिटलर का नाजीवाद[2] और मुसोलिनी का फासीवाद[3] इसी श्रेष्ठता के सिद्धांत पर टिका था। अपनी नस्ल, भाषा व धर्म को श्रेष्ठ मानना व दूसरों को इनका अनुकरण करने के लिए हिंसा या दबाव का सहारा लेना साम्प्रदायिकता का लक्षण है।

साम्प्रदायिकता लोगों के धार्मिक विश्वासों का शोषण करके फलती-फूलती है इसलिए इसका जोर इस बात पर रहता है कि व्यक्ति की पहचान धर्म के आधार पर हो। न केवल व्यक्ति की पहचान बल्कि वह संस्कृति व भाषा को भी धर्म के आधार पर परिभाषित करने की कोशिश करती है। धर्म को जीवन की सबसे जरूरी व सर्वोच्च पहचान रखने पर जोर देती है। इसलिए 'हिन्दू संस्कृति' और 'मुस्लिम संस्कृति' जैसी शब्दावली का प्रयोग किया जाता है। धर्म के आधार पर संस्कृति की पहचान करना साम्प्रदायिकता की शुरूआत है। साम्प्रदायिकता की विचारधारा संस्कृति और धर्म को एक दूसरे के पर्याय के तौर पर प्रयोग करके भ्रम पैदा करने की कोशिश करती है जबकि धर्म, संस्कृति का एक अंश मात्र है। बहुत सी चीजों के समुच्चय योग से संस्कृति बनती है और धर्म भी उसमें एक तत्त्व होता है। धर्म संस्कृति का एक अंग है, धर्म में सिर्फ आध्यात्मिक विचार, आत्मा-परमात्मा, परलोक, पूजा-उपासना आदि ही आते हैं। साम्प्रदायिक शक्तियां संस्कृति के अन्य सभी तत्त्वों के ऊपर धर्म को रखती हैं।

संस्कृति को धर्म के साथ जोड़कर साम्प्रदायिक विचारधारा एक बात और जोड़ती है कि एक धर्म के मानने वाले लोगों की संस्कृति एक होती है, उनके हित एक जैसे होते हैं। ऐसा स्थापित करने के बाद फिर वे एक कदम

आगे रखकर कहते हैं कि एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से टकराती है। दो धर्मों के व दो संस्कृतियों के लोग मिल-जुलकर नहीं रह सकते। एक को दूसरे से खतरा है। अत: संस्कृति की रक्षा के लिए हमारे (साम्प्रदायिकों के) पीछे लग जाओ। इसी आधार पर साम्प्रदायिक लोग जनता को इस बात का झांसा देकर रखते हैं कि वे संस्कृति की रक्षा कर रहे हैं जबकि वे सांस्कृतिक मूल्यों यानी मिल-जुलकर रहने, एक दूसरे का सहयोग करने, एक दूसरे का आदर करने की मानवीय सांस्कृतिक परम्पराओं को नष्ट कर रहे होते हैं।

यह बात बिल्कुल बेबुनियाद व खोखली है कि समान धर्म को मानने वालों की संस्कृति भी समान होती है। भारत के ईसाई व इंग्लैंड के ईसाई का, भारत के मुसलमान व अरब देशों के मुसलमानों का, भारत के हिन्दू व नेपाल के हिन्दुओं का, पंजाब के हिन्दू और तमिलनाडु के हिन्दू का, असम के हिन्दू व कश्मीर के हिन्दू का धर्म तो एक ही है लेकिन उनकी संस्कृति बिल्कुल अलग-अलग है। न उनके खान-पान एक जैसे हैं, न रहन-सहन, न भाषा-बोली में समानता है न रूचि-स्वभाव में। इसके विपरीत अलग-अलग धर्मों को मानने वालों की संस्कृति एक जैसी होती है। काश्मीर के हिन्दू व मुसलमानों का धर्म अलग-अलग होते हुए भी उनकी बोली, खान-पान, रूचि-स्वभाव में समानता है। तमिलनाडू के हिन्दू और मुसलमान की संस्कृति लगभग एक जैसी है। धर्म के आधार पर संस्कृति की पहचान अवैज्ञानिक तो है ही, साम्प्रदायिकरण की कोशिश भी है।

साम्प्रदायिक शक्तियां संस्कृति के नाम पर पिछड़ी व अवैज्ञानिक सोच को महिमा-मंडित करती हैं। उदाहरण के तौर पर लें तो अफगानिस्तान के तालिबानों ने संस्कृति के नाम पर पिछड़ी सोच को ही बढावा दिया। भारत में भी साम्प्रदायिक संगठन वर्ण-व्यवस्था, पितृसत्ता, सती-प्रथा, अंधविश्वास आदि को बढावा देते हैं। अपनी परम्परा के प्रति भी आलोचनात्मक रवैया नहीं अपनाते, बल्कि परम्परा से भी उन बातों को बढ़ावा देते हैं, जिससे कि आलोचनात्मक व वैज्ञानिक विवेक पैदा नहीं होता। नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन ने इसकी ओर संकेत किया है 'हाल की हिन्दू राजनीति का उल्लेखनीय पक्ष सिर्फ यह नहीं है कि इसमें अयोध्या की मस्जिद के बारे में, भारतीय मुसलमानों के उदय के बारे में, खुद हिंदू धर्म की सहिष्णुता के बारे में, लोगों के अज्ञान का तिकड़मी ढंग से इस्तेमाल किया गया है, बल्कि इसका उल्लेखनीय पक्ष यह भी है कि खुद हिंदू नेताओं द्वारा भारतीय सभ्यता की कहीं बड़ी उपलब्धियों को, यहां तक कि स्पष्ट रूप से हिन्दू योगदानों को भी अनदेखा कर, कई संदिग्ध किस्म की विशेषताओं को ग्रहण किया गया है। उनके लिए न उपनिषदों या गीता की बौद्धिक ऊंचाइयों का कोई अर्थ है, न

ब्रह्मगुप्त या शंकर की या फिर कालिदास या शूद्रक की बारिकियों का। इनके मुकाबले उनके लिए राम की मूर्ति और हनुमान की छवि के सामने माथा टिकाना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। उनका राष्ट्रवाद, भारत की तर्कवादी परंपराओं को भी अनदेखा करता है, जबकि यह वह देश है, जिसने बीज गणित, ज्यामिति तथा खगोलशास्त्र के क्षेत्र में कुछ सबसे पहले कदम उठाए थे, जहां दशमलव प्रणाली विकसित हुई, जहां आंरभिक दर्शन, चाहे धार्मिक हो या गैर धार्मिक, असाधारण ऊचांइयों पर पहुंचा, जहां लोगों ने शतरंज जैसे खेलों का आविष्कार किया, जहां सबसे पहले यौन-शिक्षा शुरू हुई और जहां राजनीतिक अर्थव्यवस्था का व्यवस्थित अध्ययन हुआ। लेकिन, हिंदू लड़ाके इन सबके बजाए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारत को नि:शंक मूर्तिपूजकों, धर्मोन्मादियों, युद्धोन्मत भक्तों और धार्मिक हत्यारों के ही देश के रूप में प्रस्तुत करते हैं।'[14]

भाषा संस्कृति का महत्वपूर्ण पक्ष है। भाषा की उत्पत्ति के साथ ही मानवजाति का सांस्कृतिक विकास हुआ है। भाषा के माध्यम से ही सामाजिक-व्यक्तिगत जीवन के कार्य चलते हैं। भाषा में ही मनोरंजन करते हैं, हंसते-रोते हैं, सुख-दुख की अभिव्यक्ति करते हैं। समान भाषा-बोली में व्यवहार करने वाले लोगों की रूचियों-स्वभाव की भाव-भूमि एक ही होती है। लेकिन साम्प्रदायिकता की विचारधारा और इसमें विश्वास करने वाले लोग भाषा को धर्म के आधार पर पहचान देकर उसका साम्प्रदायिकरण करने की कुचेष्टा करते रहते हैं। जैसे हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा मानना, पंजाबी को सिखों की और उर्दू को मुसलमानों की भाषा मानना। साम्प्रदायिक लोगों के लिए भाषा भी दूसरे धर्म के लोगों के प्रति नफरत फैलाने का औजार है, इनका भाषा-प्रेम दूसरी भाषा को कोसने-दुत्कारने में नजर आता है। अपनी भाषा के विकास के लिए कुछ न करके दूसरी भाषा को गालियां देना तो बहुत ही आसान मगर ओछे किस्म का 'भाषा-प्रेम' है। हिन्दी-उर्दू को लेकर यह विवाद काफी गहरा है। उर्दू को मुसलमानों की भाषा मानकर ही शायद इसे पाकिस्तान की राज्य-भाषा घोषित किया गया, जबकि पाकिस्तान में उर्दू बोलने वालों की संख्या बहुत कम है। यदि देखा जाए तो हिन्दी और उर्दू तो जुड़वां बहनों की तरह हैं जो एक ही क्षेत्र से, एक ही मानस से पैदा हुई हैं। अमीर खुसरो को कौन सी भाषा का कवि कहा जाए। यदि हिन्दी कथाकार मुंशी प्रेमचंद या अन्य किसी साहित्यकार की रचनाओं से उर्दू के शब्दों को निकाल दिया जाए तो वह कैसी रचनांए बचेंगी, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। साधारण हिन्दी और उर्दू दोनों जन-सामान्य की भाषाएं हैं। इनका मिला-जुला रूप ही जन-साधारण की भाषा है। भाषा के नाम पर किए जाने वाले साम्प्रदायीकरण से समझा जा सकता है कि भाषा का विवाद खड़ा किया जाता है—उर्दू व हिन्दी का,

लेकिन समाप्त की जाती है जन-साधारण की भाषा। उदाहरण के लिए आम तौर पर सार्वजनिक स्थानों पर 'पीने का पानी', 'ठण्डा पानी' लिखा होता था अब उनकी जगह लिखा है 'पेयजल', 'शीतल जल'। लोग हमेशा पानी मांगते हैं लेकिन लिखा जाता है संस्कृतनिष्ठ 'जल'। बस में लिखा होता था 'बीड़ी सिग्रेट पीना मना है', अब लिखा है 'धूम्रपान निषेध / वर्जित है, 'अन्दर आना मना है' की जगह 'प्रवेश निषेध', 'दाखिला की जगह 'प्रवेश' आदि सैकड़ों प्रयोग हैं जिन पर अनजाने ही साम्प्रदायिक मुहिम का प्रभाव पड़ा है।

भाषा के इस प्रयोग से साफ समझा जा सकता है कि वर्ग-विभक्त समाज में संस्कृति का रूप भी वर्ग-विभक्त होता है। यद्यपि वह इतनी साफ तौर पर अलग-अलग दिखाई नहीं देता। आम बोल-चाल की हिन्दी या उर्दू मिश्रित हिन्दी के स्थान पर संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग संस्कृति के वर्गीय रूप की ओर संकेत करता है। खेती करने वाले किसान-मजदूर की तथा बिना मेहनत किए ऐश करने वाले जमींदार व सेठ की रूचियों में निश्चित रूप से भिन्नता होती है। साम्प्रदायिकता हमेशा शासकों की संस्कृति यानी शोषण की संस्कृति की हिमायती होती है। साम्प्रदायिकता की विचारधारा और इसको माननेवाले गैर-बराबरी को उचित ठहराते हैं। महान कथाकार मुंशी प्रेमचंद ने 'साम्प्रदायिकता और संस्कृति' लेख में इस पर गहराई से विचार किया है कि 'अब संसार में केवल एक संस्कृति है, न कहीं हिन्दू-संस्कृति, न कोई अन्य संस्कृति, मगर हम आज भी हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति का रोना रोए चले जाते हैं। ईरानी संस्कृति है, अरब संस्कृति है, लेकिन ईसाई-संस्कृति और मुस्लिम या हिन्दू-संस्कृति नाम की कोई चीज नहीं है।'[5] मुसलमानों व हिन्दुओं के पूजा-विधान में, ईश्वर के प्रति धारणाओं में भी समानता है, भाषा, रहन-सहन, खान-पान व संगीत और चित्र-कला आदि में हिन्दू-मुसलमानें में समानता है। रहन-सहन, खान-पान से धर्म का संबंध होता है। उसी के अनुरूप धर्म का स्वरूप बनता है, न कि धर्म के कारण रहन-सहन व खान-पान का।

परिस्थितियों के अनुसार मनुष्य की संस्कृति व उसके घटक धर्म का रूप बना है। इसलिए पूरी दुनिया में धर्म का एक सा रूप नहीं है। स्थान के अनुसार उसका रूप बदल जाता है। जैसे-जैसे परिस्थितियां बदलती हैं तो धर्म का व यहाँ तक कि ईश्वर का रूप भी बदलता है; साथ ही रिवाज, पूजा-विधान तो लगातार बदले ही हैं। एक-संस्कृति जैसी या पवित्र-संस्कृति जैसी कोई चीज नहीं है। संसार के एक समुदाय के लोगों ने दूसरे समुदाय के लोगों से काफी कुछ ग्रहण किया है। इस आदान-प्रदान से ही समाज का विकास हुआ है। विशेषकर भारत जैसे देश में जहां विभिन्न क्षेत्रों से लोग आकर बसे वहां तो ऐसी किसी शुद्ध-संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यहां शक, हूण, कुषाण, पठान,

अफगान, तुर्क, मुगल आए जो विभिन्न प्रदेशों के रहने वाले थे, वे अपने साथ कुछ खान-पान की आदतें, कुछ पहनने के कपड़ों का ढंग, कुछ पूजा विधान, कुछ विचार व काम करने के नए तरीके भी लेकर आए, जिनका भारतीय समाज पर गहरा असर पड़ा। कितनी ही खाने की वस्तुएं व पकाने का ढंग, इस तरह यहां के जीवन में शामिल हो गई कि कोई यह नहीं कह सकता कि ये बाहर की चीजें हैं, वे यहां के लोगों के जीवन का हिस्सा ही बन गई।

संस्कृति जड़ वस्तु नहीं होती और न यह स्थिर रहती है, बल्कि यह हमेशा परिवर्तनशील है। जब दो संस्कृतियां मिलती हैं तो समाज विकास करता है और संस्कृति समृद्ध होती है। दो संस्कृतियों के मिलन से नए बदलाव होते हैं, जिससे किसी देश या समुदाय की संस्कृति में कुछ नया जुड़ जाता है और कुछ पुराना पीछे छूट जाता है। भारत की संस्कृति विविधतापूर्ण संस्कृति है। इसमें विभिन्न धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों, विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले लोग रहते हैं। यहां कई संस्कृतियों के लोग आकर बसे और एक दूसरे का परस्पर जो प्रभाव पड़ा उसके कारण यहां की संस्कृति बहुत ही खूबसूरत बन गई है। यहां बाहर के कई क्षेत्रों से कई जातियों के लोग जैसे हूण, शक कुषाण, अफगान, पठान, मंगोल, तुर्क आदि आए। इनकी संस्कृति अलग-अलग थी। ये हिन्दुस्तान में आए और संस्कृतियों का मिश्रण हुआ और इन्होंनें एक दूसरे को प्रभावित किया। यहां के लोगों ने इनसे काफी कुछ सीखा और वहां से आए लोगों ने यहां के लोगों से काफी कुछ सीखा। दोनों ने एक दूसरे को गहरे से प्रभावित किया। इस प्रभाव से एक नई किस्म की संस्कृति का निर्माण हुआ। एक ऐसी संस्कृति का जन्म हुआ जिसमें दोनों धर्मों की संकीर्णताओं को छोड़कर, दोनों धर्मों में व्याप्त मानवता और उदारता के बिन्दुओं को लिया गया। इसमें बहुत से संतों-सूफियों का योगदान है। जब से मुसलमान यहां आए तभी से इस बात के उदाहरण मिलते हैं। बाबा फरीद, निजामुद्दीन औलिया, जो कभी सत्ता के दरबार में नहीं गए और माना कि पूजा की उतनी ही विधियां हैं जितने कि रेत के कण। अमीर खुसरो ने हिंदी को अपनी भाषा माना और हिन्दुस्तान की तुलना स्वर्ग के बगीचे से की। कबीरदास ने दोनों धर्मों की कट्टरता और बाहरी दिखावे को बेकार की चीज मानते हुए आचरण की पवित्रता पर जोर दिया और अल्लाह और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं माना। गुरु नानक ने सभी धर्मों के पवित्र माने जाने वाले तीर्थों की यात्राएं कीं और व्याप्त आडम्बरों का विरोध करते हुए मानव-एकता संदेश दिया और लंगर-संगत की ऐसी परम्पराएं शुरू कीं जिनसे वास्तव में मानव में एकता स्थापित हो सके। बुल्लेशाह, जायसी ने यहां की लोककथाओं को आधार बनाकर काव्य रचना की और यहां की लोकरीतियों को गहराई से समझा। रसखान को किसी भी कृष्णभक्त कवि से कम नहीं माना जा सकता, श्रीकृष्ण के प्रति उनकी भक्ति

बेजोड़ है। दादू दयाल ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिन्दुओं की पहचान करवाई। रहीम की कृष्ण भक्ति और तुलसीदास से दोस्ती तो सभी जानते हैं। इस तरह एक लम्बी परम्परा है जो हिन्दू-मुस्लिम एकता की कड़ियां हैं।

इस संस्कृति के निर्माण में सूफी संतों के अलावा कुछ शासकों का योगदान है, जिन्होंनें अपनी राजसत्ता चलाने के लिए ऐसी नीतियां अपनाई, जिससे कि किसी धर्म के मानने वालों की भावनाओं को ठेस न लगे। दोनों धर्मों के विश्वासों का आदर किया। बाबर ने अपने बेटे हुमायुं को सभी धर्मों का आदर करने की नसीहत दी। हुमायुं को शेरशाह सूरी से एक हिन्दू ने ही बचाया था, हुमायुं को मेवाड़ की रानी ने राखी भेजी थी। अकबर तो पैदा ही हिन्दू घराने में हुआ था और वह सभी धर्मों की शिक्षाओं को सुनता था। धर्मों की कट्टरता से तंग आकर उसने एक नया धर्म ही चला दिया था। उसने ऐसे अनेक काम किए जिससे यह कहा जा सकता है कि वह सभी धर्मों का आदर करता था। औरगंजेब जिसे सबसे अधिक कट्टर माना जाता है उसने इलाहाबाद नगर पालिका में पड़ने वाले सोमेश्वर नाथ मंदिर को, उज्जैन में महाकेश्वर मंदिर को, चित्रकूट में बाला जी मंदिर, गुहावटी में उमानन्द मंदिर, शत्रुंजय में जैन मंदिर और उतरी भारत में फैले गुरुद्वारों को दान दिया। शिवाजी की सेना में तो मुसलमान बहुत अधिक और बहुत ऊंचे पदों पर थे। गुरु गोविन्द सिंह के जीवन में कई ऐसी घटनाएं हैं जहां मुसलमानों ने उनकी मदद की। टीपू सुल्तान और बहादुरशाह जफर, महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन से जुड़ी घटनाओं से हिन्दू-मुस्लिम की एकता, आपसी विश्वास और धार्मिक सद्भाव को आसानी से समझा जा सकता है।

बहुत सी परम्पराएं व त्यौहार ऐसे हैं, जो हिन्दुओं के हैं और मुसलमान उनमें बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। बहुत सी परम्पराएं ऐसी हैं जो मुसलमानों की हैं और हिन्दू बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। बहुत सी परम्पराएं ऐसी भी हैं जो दोनों की साझी हैं। बहुत से रिवाज और परम्पराएं इस तरह से घुल मिल गई हैं कि यह बताना मुश्किल है कि कौन सी परम्परा हिन्दू है और कौन सी परम्परा मुस्लिम। यह परम्पराएं भारत की सांझी संस्कृति की ओर इशारा करती हैं। दिल्ली का 'फूल वालों की सैर' और अवध का 'कौसर बाग का मेला' इस बात का उदाहरण हैं। अहमदशाह वली के उर्स पर होने वाली परम्पराएं इस बात का जीता-जागता नमूना है। खान-पान, व रहन-सहन की अन्य परम्पराओं पर हिन्दुओं ने मुसलमानों से सीखा और मुसलमानों ने हिन्दुओं से सीखा। हिन्दुओं ने मुसलमानों से एक-से-एक व्यंजन बनाने सीखे और मुसलमानों ने हिन्दुओं से। संगीत में, चित्रकला में, स्थापत्य में, ज्योतिष, और साहित्य में और जीवन के अन्य क्षेत्रों में दोनों का एक दूसरे पर गहरा प्रभाव देखा जा सकता है।

साझी संस्कृति का नमूना इस रूप में देखा जा सकता है कि मुस्लिम-धर्म

में कुछ परम्पराएं ऐसी शुरू हुई, जो केवल हिन्दुस्तान में ही हैं— जैसे ताजिये निकालने की परम्परा भारत के अलावा और कहीं नहीं है। यह यहां का ही प्रभाव है। 'बिस्मिल्लाह' और 'अकीका' जैसे संस्कार यहां का प्रभाव हैं। यहां के लोगों ने मुसलमानों से बहुत कुछ सीखा। सिक्ख धर्म को देखा जा सकता है। सिक्ख धर्म में गुरुद्वारों के ढांचे में मीनारों और गुम्बदों का प्रयोग ईरानी वास्तुकला का प्रभाव है। सिर्फ ढांचे में ही नहीं बल्कि दार्शनिक स्तर पर एकेश्वरवाद का अपनाया जाना और सिर पर कपड़ा रखकर पूजा करने की पद्धति भी मुसलमानी प्रभाव है। इस तरह एक-दूसरे को बहुत अधिक प्रभावित किया है। इससे एक नई संस्कृति ने जन्म लिया। जिसमें सभी के रीति-रिवाज शामिल थे, आज तक यह सीखने-सिखाने की परम्परा जारी है और इसी पद्धति से किसी देश का विकास होता है।[6]

जब पवित्र या शुद्ध-संस्कृति जैसी चीज ही नहीं है 'फिर हमारी समझ में नहीं आता कि वह कौन सी संस्कृति है, जिसकी रक्षा के लिए सांप्रदायिकता इतना जोर बांध रही है। वास्तव में संस्कृति की पुकार केवल ढोंग है, निरा पाखंड और इसके जन्मदाता भी वही लोग हैं, जो साम्प्रदायिकता की शीतल छाया में बैठे विहार करते हैं। यह सीधे-सादे आदमियों को साम्प्रदायिकता की ओर घसीट लाने का केवल एक मंत्र है और कुछ नहीं। हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति के रक्षक वही महानुभाव और वही समुदाय हैं, जिनको अपने ऊपर, अपने देशवासियों के ऊपर, सत्य के ऊपर कोई भरोसा नहीं, इसलिए अनंत तक ऐसी शक्ति की जरूरत समझते हैं, जो उनके झगड़ों में सरपंच का काम करती है।"[7]

संस्कृति लगातार निर्मित होती है। सामाजिक स्थितियों के बदलने के साथ-साथ मनुष्य की रुचियों में, स्वभाव में, रहन-सहन व खान-पान में परिवर्तन आता है, यानी कि संस्कृति बदलती है। जब संस्कृति परिवर्तनशील है तो साम्प्रदायिक शक्तियां रक्षा किसकी करना चाहती हैं? जब एक संस्कृति के लोग दूसरी संस्कृति के लोगों के संपर्क में आते हैं तो वे एक-दूसरे से सीखते हैं और इस प्रक्रिया में संस्कृति का विकास होता है। राष्ट्र-कवि व संस्कृति चिन्तक रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय'[8] में हिन्दू और मुस्लिम के संदर्भ में इसके अनेक उदाहरण दिए हैं और दिखाया है कि एक-दूसरे से समाज ने बहुत कुछ ग्रहण किया है।

संदर्भ

1. जातीयता, जातिवाद और साम्प्रदायिकता; वासुदेव शर्मा (सं.); पृ.-45 लोकजतन प्रकाशन, भोपाल; 2004

2. नाजीवाद : जर्मनी के तानाशाह हिटलर के राजनीतिक दल का नाम था नात्सी। इससे नाजीवाद शब्द बना है। हिटलर की राजनीतिक विचारधारा

अपने नस्ल, धर्म, भाषा व संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ मानती थी और अन्य सब को निकृष्ट, गंदे, गद्दार व असभ्य। आर.एस.एस. की विचारधारा व सैन्य संगठन न केवल उससे मिलता है बल्कि हिटलर की विचारधारा व संगठन इसका प्रेरणा स्त्रोत है। गोलमेज कांन्फ्रेंस से वापस लौटते हुए श्री मुंजे हिटलर से मिले थे और उनके संगठन की गतिविधियां व तौर-तरीके देखकर आए थे। उन्होंने अपने डायरी में यह भी लिखा है कि उन्होंने इसके बारे में आर.एस.एस. के संस्थापक डॉ. हेडगोवार से चर्चा की और इस कार्यप्रणाली को अपनाने के लिए कहा।

3. फासीवाद : इटली के तानाशाह मुसोलिनी की विचारधारा को फासीवाद कहा जाता है है। यह सर्वसत्तावाद की हिमायत करती है। सभी नागरिकों को समानता की बजाए गैरबराबरी के व्यवहार को मान्यता देती है।

4. साम्प्रदायिकता और संस्कृति के सवाल; सहमत प्रकाशन, दिल्ली; (अमृत्य सेन के लेख: धर्मनिरपेक्ष भारत के लिए चुनौतियां); पृ.-61

5. जातीयता, जातिवाद और साम्प्रदायिकता ; वासुदेव शर्मा (सं.) ; पृ.-46; लोकजतन प्रकाशन, भोपाल; 2004

6. सांझी संस्कृति; डां. सुंभाष चन्द्र; भूमिका से ; उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली; 2003

7. जातीयता, जातिवाद और साम्प्रदायिकता; वासुदेव शर्मा (सं.); पृ.-47; लोकजतन प्रकाशन, भोपाल; 2004

8. संस्कृति के चार अध्याय ; रामधारी सिंह दिनकर; पृ.– 471 से 477(देंखें परिशिष्ट); लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद; 1994

धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिकता

धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिकता दोनों राजनीतिक शब्द हैं और लगभग एक दूसरे के विरोधी हैं। इसलिए साम्प्रदायिकता का सबसे बड़ा हमला धर्मनिरपेक्षता पर ही होता है। कभी धर्मनिरपेक्षता की खिल्ली उड़ाकर इसको कमज़ोर करते हैं तो कभी धर्मनिरपेक्ष लोगों को छद्म-धर्मनिरपेक्ष कहकर इसकी स्वीकार्यता पर प्रहार करते हैं इसलिए धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिकता के अन्त:संबंधों को समझना निहायत जरूरी है। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है कि राज्य के मामलों में, राजनीति के मामलों में और अन्य गैर-धार्मिक मामलों से धर्म को दूर रखा जाए और सरकारें व प्रशासन धर्म के आधार पर किसी नागरिक से किसी प्रकार का भेदभाव न किया जाए। राज्य में सभी धर्मों के लोगों को बिना किसी पक्षपात के विकास के समान अवसर मिलें।

साम्प्रदायिक शक्तियां धर्मनिरपेक्षता को लेकर भ्रम फैलाने की कोशिश करती हैं कि धर्म को जीवन के किसी पहलू से दूर नहीं किया जा सकता और बिना धर्म को शामिल किए राजनीति नीतिपूर्ण-मूल्यपरक नहीं रहेगी। यहां यही समझने की जरूरत है कि धर्मनिरपेक्षता का अर्थ किसी के धर्म का विरोध करना नहीं है, बल्कि सबको अपने धार्मिक विश्वासों व मान्यताओं को पूरी आजादी से निभाने की छूट है। धर्मनिरपेक्षता में धर्म व्यक्ति का नितान्त निजी मामला माना है। जिसे राजनीति में या सार्वजनिक जीवन में दखल नहीं देना चाहिए और इसी तरह राज्य भी धर्म के मामले में तब तक दखल न दे जब तक कि विभिन्न धर्मों के आपस में टकराने की स्थिति न आये या राज्य की मूल धारणा से नहीं टकराते। धर्मनिरपेक्ष राज्य में उस व्यक्ति का भी सम्मान रहता है जो किसी भी धर्म को नहीं मानता।

धर्म की निरपेक्षता पर विचार करते हुए प्रख्यात इतिहासकार विपन चन्द्रा ने लिखा कि 'दूसरी जगहों की तरह भारत मे भी धर्म निरपेक्षता की चार तरह से व्याख्या की गई है। पहली: धर्म को राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। धर्म राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा तथा सामाजिक जीवन और संस्कृति के बड़े क्षेत्रें से अलग रहना चाहिए। धर्म व्यक्ति का निजी या व्यक्तिगत मामला समझा जाना चाहिए। इसे अस्वीकार करने वाली धर्मनिरपेक्षता की तथाकथित भारतीय परिभाषा की बात करना धर्मनिरपेक्षता का निषेध है। साथ

ही धर्मनिरपेक्षता का मतलब जीवन से धर्म को निकालना या धर्म का विरोध नहीं है। धर्म निरपेक्ष शासन का अर्थ धर्म को हतोत्साहित करने वाला शासन नहीं है।

दूसरी: किसी बहुधर्म समाज में धर्म निरपेक्षता का यह भी मतलब है कि शासन सभी धर्मों के प्रति तटस्थ रहे या जैसा कि बहुत से धार्मिक व्यक्ति कहते हैं निरीश्वरवाद सहित सभी धर्मों को बराबर सम्मान दें।

तीसरी: धर्मनिरपेक्षता का आगे मतलब है कि शासन सभी नागरिकों को बराबर समझे और उनके धर्म के आधार पर उनके साथ भेदभाव न करें।

चौथी: भारत के संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता की और विशेषता है। भारत में धर्मनिरपेक्षता उपनिवेशवाद के खिलाफसभी भारतीयों को इकट्ठा करने और राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया के हिस्से की तरह एक विचारधारा के रूप में आई। इसके साथ-साथ सांप्रदायिकता एक अत्यधिक विभाजक सामाजिक और राजनीतिक ताकत के रूप में उभरी। परिणामस्वरूप धर्मनिरपेक्षता का मतलब सांप्रदायिकता का स्पष्ट विरोध भी हुआ। यह सुविदित है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विजन में धर्म-निरपेक्ष समाज और धर्मनिरपेक्ष शासन शामिल है। इस विजन और उसके लिए प्रतिबद्धता के कारण ही स्वतन्त्र भारत विभाजन और विभाजन दंगों के बावजूद धर्मनिरपेक्ष संविधान तैयार कर सका और धर्म निरपेक्ष शासन की आधारशिला रख सका।'[1]

साम्प्रदायिकता की विचारधारा धर्मनिरपेक्षता पर तीखे हमले इसलिए करती है कि धर्मनिरपेक्षता के साथ लोकतंत्र व्यवस्था जुड़ी है। धर्मनिरपेक्षता को अपनाए बिना किसी देश में लोकतंत्र नहीं रह सकता और साम्प्रदायिकता मूलत: लोकतंत्र के खिलाफहै। साम्प्रदायिक लोग इस बात को अच्छी तरह जानते है कि वे लोकतंत्र का सीधे-सीधे विरोध नहीं कर सकते लेकिन धर्म की आड़ लेकर और धर्मनिरपेक्षता के बारे में गलतफ हमी पैदा करके, धर्मनिरपेक्षता को 'अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण' कहकर लोकतंत्र को कमजोर कर सकते हैं। साम्प्रदायिकता समाज के सभी समुदाय को समान नागरिक अधिकारों के खिलाफहै। वह समाज मे एक समुदाय का दूसरे समुदाय पर और एक समुदाय के विशिष्ट वर्ग का दूसरे वर्गो पर वर्चस्व स्थापित करना चाहती है, जबकि लोकतंत्र इस बात को कम से कम सैद्धांतिक तौर पर तो सुनिश्चित करता है कि समाज के सभी लोगों को समान नागरिक अधिकार मिलें चाहे अल्पसंख्यक हो या बहुसंख्यक। साम्प्रदायिकता धर्म को नागरिक अधिकारों के ऊपर रखती है, जबकि धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्र में नागरिक अधिकार अधिक महत्वपूर्ण होते है।

भारत की एकता व अखंड़ता के लिए धर्मनिरपेक्षता निहायत जरूरी है।

भारत में अनेक धर्मों को मानने वाले, अनेक भाषाएं बोलने वाले लोग रहते हैं। भारत में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, फारसी, जैन, बौद्ध आदि सभी धर्मों के लोग रहते हैं। 'धार्मिक बहुलता भारतीय समाज की विशेषता है। प्रख्यात समाज अर्थशास्त्री नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत अमर्त्य सेन ने इस पर विचार करते हुए कहा कि 'धार्मिक बहुलता के मसले का संबंध सिर्फ हिन्दुओं और अन्य धर्मों को मानने वालों (या किसी भी धर्म को न मानने वालों) के बीच के रिश्तों तक ही सीमित नहीं हैं। इसका संबंध खुद हिन्दू-धर्म के भीतर मौजूद विविधताओं से भी है। अगर हिंदू धर्म को हम एक धर्म के रूप में देखें, तो उसे ऐसे धर्म के रूप में देखना होगा, जिसका ढांचा पूरी तरह बहुलतावादी है। उसके दायरे में आने वाले विभाजन सिर्फ जाति के विभाजन नहीं हैं (हालांकि ये विभाजन भी बहुत महत्वपूर्ण हैं), बल्कि चिंतन-पद्धतियों के भी विभाजन हैं। दर्शन के छः सम्प्रदायों का प्राचीन हिंदू वर्गीकरण तक अत्यंत विविधतापूर्ण विश्वासों और तर्क-पद्धतियों की मौजूदगी स्वीकार करता है। अपेक्षाकृत काफी बाद में, चौदहवीं शताब्दी में जब हिंदू विद्वान, मैसूर की श्रृंगेरी पीठ के प्रमुख, माधवाचार्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ के सोलह अध्यायों में से हरेक में हिंदू धार्मिक सिद्धांतों के अलग-अलग सम्प्रदायों (चार्वाक मत के नास्तिकवाद से शुरू कर) का विवरण दिया था और इस पर विचार किया था कि किस तरह इनमें से हरेक धार्मिक संप्रदाय, हिंदू चिंतन के दायरे में दूसरों से भिन्न था।'[2] धर्मनिरपेक्षता असल में समाज की इस बहुलतापूर्ण पहचान की स्वीकृति है, जो अलग-अलग धार्मिक विश्वास रखने वाले, अलग-अलग भाषाएं बोलने वाले समुदायों व अलग-अलग सामाजिक आचार-व्यवहार को रेखांकित करती है और इन बहुलताओं, विविधताओं व भिन्नताओं के सह-अस्तित्व को स्वीकार करती है, जिनमें परस्पर सहिष्णुता का भाव विद्यमान है।

भारत के स्वतन्त्रता-आन्दोलन के दौरान इसमें भाग ले रहे राष्ट्रीय नेताओं ने धर्म को राजनीति से अलग रखने की बात की। महात्मा गांधी भी धर्म को व्यक्ति का निजी मामला मानते थे और राष्ट्रीय व राजनीतिक मामलों में धर्म के हस्तक्षेप को अवांछनीय बताया। गांधी जी ने अपने भाषणों व लेखों में इस बात को बार-बार दोहराया। 'धर्म हर व्यक्ति का निजी मामला है। उसका राजनीति या राष्ट्रीय मामलों के साथ घालमेल नहीं किया जाना चाहिए।'[3] ...'धर्म राष्ट्रीयता की कसौटी नहीं है बल्कि मनुष्य और ईश्वर के बीच निजी मामला है'[4] ...'सभी राष्ट्रवादी धर्म को राजनीति से न मिलाएं। सभी धर्मनिरपेक्ष मामलों में वे सबसे पहले और सबसे अंत में भारतीय हैं। धर्म सम्बंधित व्यक्ति का निजी मामला है।'[5]

शहीद भगतसिंह और उसके संगठन के क्रांतिकारी साथियों ने भी धर्म को राजनीति के क्षेत्र से बाहर रखने का विचार रखा। भगतसिंह ने 'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' लेख में अपना मत स्पष्ट किया कि '1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्तिगत मामला है, इसमें दूसरे का कोई दखल नहीं। न ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए, क्योंकि यह सरबत को मिलकर एक जगह काम नहीं करने देता। इसलिए गदर पार्टी— जैसे आन्दोलन एकजुट व एकजान रहे, जिनमें सिक्ख बढ़-चढ़कर फांसियों पर चढ़े और हिन्दू-मुसलमान भी पीछे नहीं रहे।

इस समय कुछ भारतीय नेता भी मैदान में उतरे हैं, जो धर्म को राजनीति से अलग करना चाहते हैं। झगड़ा मिटाने का यह भी एक सुन्दर इलाज है और हम इसका समर्थन करते हैं। यदि धर्म को अलग कर दिया जाये तो राजनीति पर हम सभी इकट्ठे हो सकते हैं। धर्मों में हम चाहे अलग-अलग ही रहें।'[6] आजादी की लड़ाई में शामिल सभी नेताओं ने भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में निर्माण करने की बात कही थी। जब भारत स्वतन्त्र हुआ और भारत का विभाजन हुआ तो लगभग स्पष्ट था कि पाकिस्तान इस्लाम धर्म को राज्य धर्म के रूप अपनायेगा तब भारत के धर्मनिरपेक्षता के बारे में सभी नेता स्पष्ट थे। '5 जून 1947 को बिड़ला ने सरदार पटेल से पूछा, 'वाइसराय की घोषणा से मुझे इस बात की प्रसन्नता हुई है कि सब आपकी इच्छा के अनुरूप हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह हिन्दुओं के लिए बहुत अच्छा हुआ है और अब हमें सांप्रदायिक नासूर से छूटकारा मिल जाएगा। अलग हुआ क्षेत्र निश्चय ही मुस्लिम राज्य बनेगा। क्या यह उचित समय नहीं है कि हम हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य बनाएं और हिन्दू धर्म को राज्य का धर्म बनाएँ? हमें देश को मजबूत भी बनाना है ताकि यह किसी भी भावी आक्रमण का सामना कर सकें।'

बल्लभभाई पटेल की इस पर प्रतिक्रिया हुई? उन्होंने उत्तर में लिखा, 'मैं नहीं समझता कि हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य और हिन्दू धर्म को राज्य का धर्म बनाया जा सकता है। हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि देश में अल्पसंख्यक वर्ग है जिसकी रक्षा हमारी प्राथमिक जिम्मेवारी है। राज्य सबके लिए होगा चाहे किसी की जाति या धर्म कुछ भी हो (सरदार पटेल के पत्र, खण्ड— 4, पृ॰— 55-57)।'[7] सांस्कृतिक बहुलता वाले देशों को धर्मनिरपेक्षता ही एकजुट रख सकती है। धर्मनिरपेक्षता भारत के लिए कोई नई चीज नही है। विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों के लोग सह-अस्तित्व के साथ हजारों सालों से साथ-साथ रह रहे हैं। अंग्रजों ने जब अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए धर्म के आधार पर लोगों में फूट ड़ालने की कोशिश की, एक सम्प्रदाय के लोगों को

दूसरे सम्प्रदाय के विरुद्ध भड़काने-उकसाने का काम किया और स्वतंत्रता-आन्दोलन के सामने जब यह एक चुनौती बन गई तो इसका मुकाबला करने के लिए धर्मनिरपेक्षता को अपनाया गया। 'स्वतंत्रता आन्दोलन में समाज के सभी वर्गों की हिस्सेदारी तभी संभव थी, जब सबको अपनी स्वतंत्रता नजर आती। इसलिए स्वतंत्रता-आन्दोलन के नेताओं ने धर्मनिरपेक्षता को अपनाना अनिवार्य समझा था।

धर्मनिरपेक्षता को कमजोर करने के लिए साम्प्रदायिक लोग एक पैंतरा लेते हैं और कहते हैं कि धर्मनिरपेक्षता एक विदेशी विचार है, यह भारतीय विचार नहीं है। यह बात न तो तर्क के आधार पर सही है और न ही तथ्यपरक है। विचार किसी देश के भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित नही होतें, न ही विचारों को किसी देश की सीमा तक बांध कर रखा जा सकता है। विचारों की प्रकृति वैश्विक होती है। यदि किसी विचार या दार्शनिक सिंद्धात को यह मानकर छोड़ा जायेगा या अपनाया जायेगा कि वह विदेशी है या स्थानीय तो यह संकीर्ण मानसिकता तो होगी ही बल्कि बहुत सारे सिद्धांत-विचार, तौर-तरीके हमें छोड़ देने होंगे। साम्प्रदायिक लोग तो समाजवाद और लोकतंत्र को भी विदेशी कहकर खारिज कर सकते हैं। जब कोई विचार या सिद्वांत अपना सामाजिक अस्तित्व बना लेता है तो उस पर किसी एक का नहीं बल्कि समस्त मानवता का हक होता है। यदि कोई समाज किसी विचार को अपने विकास के लिए जरूरी समझता है तो बिना किसी हिचकिचाहट के अपनाना ही चाहिए। यदि देखा जाए तो मनुष्य ने एक दूसरे से सीखकर ही तरक्की की है। 'धर्मनिरपेक्षता' शब्द बेशक 'सेक्युलर' शब्द का अनुवाद है लेकिन इसके विचार में जरा भी विदेशीपन नहीं है।

साम्प्रदायिकता कभी भी खुले आम अपने इरादों को उजागर नहीं करती, वह अपने चरित्र को छिपाने के लिए तरह-तरह के ढ़ोंग और पाखंड करती है। उसका हमेशा एक गुप्त एजेंडा (मंतव्य) होता है। अपने मंतव्यों को पूरा करने के लिए बहुरूपिये की तरह कोई भी भूमिका अपना लेती है। साम्प्रदायिक तत्व इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि धर्मनिरपेक्षता को पूरी तरह नकारकर वह लोगों का समर्थन हासिल नहीं कर सकते, इसलिये वे कभी धर्मनिरपेक्षता की जगह पंथनिरपेक्षता की बात करके इसको नकारने की कोशिश करते हैं तो कभी धर्मनिरपेक्ष लोगों को छद्म-धर्मनिरपेक्ष कहकर स्वयं को सच्चा धर्मनिरपेक्ष कहते हैं और कभी सकारात्मक धर्मनिरपेक्षता की बात करते हैं। अन्ततः ये सब धर्मनिरपेक्षता पर चोट पहुँचाने की चालें हैं। उदाहरण के रूप मे हम देख सकते है कि जब भारत को आजादी मिली तो जनसंघ को छोड़कर सभी राजनीतिक दलों ने धर्मनिरपेक्षता को स्वीकार

किया और जनसंघ अपने हिन्दू-राष्ट्र के नारे पर कायम रहा, लेकिन उसका बहुत सीमित आधार रहा। पर सातवे दशक में उसने धर्मनिरपेक्ष होने का ढ़ोंग करना और स्वयं को धर्मनिरपेक्ष होने का ढोल पीटना शुरू किया। 1977 में जब जनता पार्टी बनी और जनसंघ का उसमें विलय हुआ तो जनसंघ के लोगों ने दिल्ली में महात्मा गांधी की समाधि पर धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद को अपनाने की शपथ ली थी, लेकिन साम्प्रदायिक शक्तियों के मन में धर्मनिरपेक्षता के लिए कोई जगह नहीं थी, इसलिए जब घोर साम्प्रदायिक संगठन से नाता तोड़ने की बात आई तो उन्होंने साम्प्रदायिक संगठन से नाता तोड़ने की बजाए सरकार को गिराना उपयुक्त समझा। वास्तव में तो यही छद्म धर्मनिरपेक्षता है इससे उनकी प्राथमिकता का अनुमान लगाया जा सकता है। यह भी सही है कि जब धर्मनिरपेक्षता के नाम पर राजनीति करनेवाले दल भी सत्ता के लिए इस सिद्धांत को त्याग देते हैं तो साम्प्रदायिक शक्तियों व दलों के छद्म धर्मनिरपेक्षता के आरोप को आधार मिल जाता है। चुनावी लाभ के लिए धर्मनिरपेक्ष दलों ने अपनी विचारधारा को समय-समय पर तिलांजलि भी दी है। कांग्रेस पार्टी ने स्वतंत्रता पूर्व से ही धर्मनिरपेक्षता की नीति अपनाई थी, लेकिन स्वतंत्रता के बाद लम्बे समय तक शासन में रहने के बावजूद लोगों की आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सकी और कभी अल्पसंख्यकों के तो कभी बहुसंख्यकों के वोट प्राप्त करने के लिए धर्मनिरपेक्षता को त्याग दिया। मुस्लिम धर्म के कठमुल्लाओं को खुश रखने के लिए तथा उनकी अपील पर मुस्लिम वोटों को प्राप्त करने के लिए शाहबानो केस में अनुचित हस्तक्षेप किया तो अयोध्या के राम-मन्दिर का ताला खुलवाकर बहुसंख्यकों को खुश करने की कोशिश की। इसी तरह 1992 में बाबरी मस्जिद को भी ढहने से रोकने के लिए कांग्रेस की केन्द्र सरकार ने प्रभावी कदम नहीं उठाए। समाजवादी पार्टी व उसके नेता मुलायम सिंह भी अपने चुनावी लाभ के लिए धर्मनिरपेक्षता को छोड़कर किसी एक पक्ष की ओर झुकते रहे हैं। भारतीय राजनीति में वामपंथी पार्टियों को ही सच्चे अर्थों में धर्मनिरपेक्ष कहा जा सकता है। धर्मनिरपेक्षता एक विचारधारा व मूल्य का नाम है जिसे सभी धर्मनिरपेक्ष कहे जाने वाले दलों को अपनाना व पालन करना चाहिए। सुविधानुसार धर्मनिरपेक्षता को अपना लेना या त्याग देना धर्मनिरपेक्षता नहीं है।

संदर्भ

1. गांधी: एक पुनर्विचार; विपन चन्द्रा के लेख; (गांधी जी, धर्म निरपेक्षता और साम्प्रदायिकता से); पृ.-49; सहमत, नई दिल्ली; 2004

2. साम्प्रदायिकता और संस्कृति के सवाल; सहमत प्रकाशन, दिल्ली;

(अमर्त्य सेन के लेख: धर्मनिरपेक्ष भारत के लिए चुनौतियां) ; पृ.-41

3. हरिजन; 7 दिसम्बर, 1947 ; एम. के. गांधी

4. हरिजन; 29 जून, 1947 ; एम. के. गांधी

5 डी.के. तेन्दुलकर; वाल्यूम 8; पृ.-240

6. मेरी कलम से: भगत सिंह; सं. डॉ. सुभाष चन्द्र); पृ.-10 ; शहीद भगत सिंह अध्ययन केन्द्र, नरवाना (हरियाणा); 2005

7. धर्म और राजनीति: राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ परिवार; मधु लिमये; पृ.-77; समता ट्रस्ट, भोपाल; 1992

राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता की राजनीति और कुकृत्य इतने घिनौने और अमानवीय हैं कि साम्प्रदायिकता फैलाने वाले लोग भी स्वयं को साम्प्रदायिक कहते हुये शर्माते हैं, इसलिए वे अपने इस रूप को छुपाने के लिए तथा समाज से सम्मान व समर्थन पाने के लिए तरह-तरह की शब्दावली का प्रयोग करते हैं। राष्ट्रवाद भी एक ऐसा ही शब्द है, जिसका वे खूब प्रयोग करते हैं और स्वयं को राष्ट्रवादी कहते हैं, और राष्ट्रवाद की आड़ लेकर राष्ट्र-विरोधी और राष्ट्रवाद विरोधी गतिविधियों को अंजाम देते रहते हैं। कई बार अनजाने में या साम्प्रदायिकता के दुष्प्रचार से प्रभावित होकर लोग साम्प्रदायिक लोगों को राष्ट्रवादी कहने लगते हैं जैसे हिन्दू साम्प्रदायिक, मुस्लिम साम्प्रदायिक या सिख साम्प्रदायिक की जगह हिन्दू-राष्ट्रवादी, मुस्लिम-राष्ट्रवादी या सिख-राष्ट्रवादी। असल में साम्प्रदायिक लोगों को राष्ट्रवादी कहना उनको वैधता व सम्मान देना है। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के दौरान महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि राष्ट्रवादी नेताओं ने साम्प्रदायिकों के लिए कभी 'राष्ट्रवादी' शब्द का प्रयोग नहीं किया बल्कि उनके असली चरित्र को बताने वाले 'साम्प्रदायिक' शब्द का ही प्रयोग किया।

राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता दोनों परस्पर विरोधी हैं। यह बिल्कुल संभव नहीं है कि एक व्यक्ति साम्प्रदायिक भी रहे और साथ-साथ राष्ट्रवादी भी रहे। किसी राष्ट्र में उसके लोग ही सबसे महत्वपूर्ण घटक हैं। जनता के बिना किसी राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती। राष्ट्र की मजबूती के लिए जनता में एकता व भाईचारा होना आवश्यक है। जनता में एकता व भाईचारा जितना अधिक होगा कोई राष्ट्र उतना ही मजबूत होगा। जनता में एकता और भाईचारा पैदा करने वाली शक्तियों को ही सच्चा राष्ट्रवादी कहा जा सकता है। जबकि साम्प्रदायिक शक्तियां धर्म के आधार पर देश की जनता की एकता को तोड़ती हैं, उनमें फूट डालती हैं और उनको आपस में लड़वाने के लिए एक दूसरे के बारे में गलतफहमियां पैदा करती हैं और देश को अन्दर से खोखला करती हैं तो उनको राष्ट्रवादी किसी भी दृष्टि से नहीं कहा जा सकता। साम्प्रदायिक-सद्भाव पर शहीद हुए क्रांतिकारी गणेशशंकर विद्यार्थी ने 'राष्ट्रीयता' पर प्रकाश डालते हुए लिखा है 'राष्ट्रीयता जातीयता नहीं है।

राष्ट्रीयता धार्मिक सिद्धांतों का दायरा नहीं। राष्ट्रीयता सामाजिक बंधनों का घेरा नहीं है। राष्ट्रीयता का जन्म देश के स्वरूप से होता है। उसकी सीमाएँ देश की सीमाएं हैं। प्राकृतिक विशेषता और विभिन्नता देश को संसार से अलग और स्पष्ट करती है और उसके निवासियों को एक विशेष बंधन—किसी सादृश्य के बंधन-से बांधती है।'[1]

राष्ट्र की अवधारणा एवं राष्ट्रवाद की भावना असल में आधुनिक काल में हुई है। योरोप में सामन्ती शासन के दौरान सत्ता और चर्च का गठबन्धन इस तरह से था कि चर्च, धर्म गुरु या धर्म राजा की सत्ता को दैवीय सत्ता के रूप में स्वीकृति प्रदान करता था तो सामन्ती शासन चर्च को दान आदि देकर उसकी सर्वोच्चता को उचित ठहराता था। सामन्ती शोषण के विरुद्ध जब ओद्यौगिक क्रांति हुई तो उसमें जहां धर्म को अपनाया तो वहीं चर्च की सर्वोच्चता को भी चुनौती दी। इस तरह राष्ट्र की अवधारणा का उदय राष्ट्र पर धर्म की सर्वोच्चता को समाप्त करने के साथ ही जुड़ा है। जिस क्षेत्र में कोई विचार पैदा होता है उस क्षेत्र की जरूरतें भी उसके साथ जुड़ जाती हैं। योरोप के देशों में एक ही भाषा बोलने वाले, एक ही धर्म को मानने वाले तथा एक ही नस्ल के लोग रहते थे, इसलिए उन्होंने 'एक धर्म, एक नस्ल, एक भाषा' के मानने वालों को एक राष्ट्र की संज्ञा दी। योरोप के देशों में विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग प्राय: दूसरे विश्व युद्ध के बाद गए हैं, लेकिन भारत में सदियों से विभिन्न नस्लों, धर्मों, भाषाओं को बोलने वाले लोग रहते हैं, इसलिए 'एक धर्म, एक भाषा, एक नस्ल' वाली राष्ट्र की परिभाषा भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थी। इसलिए तत्कालीन राष्ट्रवादी नेताओं ने इस परिभाषा को खारिज कर दिया और विभिन्न धर्मों, भाषाओं व नस्लों को शामिल करने वाले राष्ट्र की परिकल्पना की। इसके विपरीत अंग्रेजों के पिछलग्गू साम्प्रदायिक व संकीर्ण लोगों ने 'एक धर्म, एक राष्ट्र, एक नस्ल' वाली परिभाषा के राष्ट्र को स्वीकार किया। वे इन आधारों पर देश के लोगों को लड़वाना चाहते थे और अपने इस मकसद में वे आंशिक तौर पर सफल भी हुए।

भारत में राष्ट्रवाद की उत्पत्ति स्वतन्त्रता-आन्दोलन के दौरान साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करने में हुई थी। ब्रिटेन के साम्राज्यवाद ने भारत की धन-दौलत का शोषण किया और यहां के संसाधनों का अपने हित में इस्तेमाल किया। भारत की आम जनता ने तथा अन्य वर्गों ने इस बात को रेखांकित किया कि साम्राज्यवादी नीतियां उनके जीवन जीने के आधार को समाप्त कर रही हैं। लोग इसके विरुद्ध संगठित होने लगे और उन्होंने निर्णायक आन्दोलन छेड़ा। लेकिन साम्प्रदायिक शक्तियों ने हमेशा साम्राज्यवादी अंग्रेजों का साथ दिया, उनके शासन व लूट को जारी रखने में उनकी सहयोगी रहीं, और

अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति में भागीदार बनकर धर्म के आधार पर लोगों की एकता को तोड़ा। इस तरह साम्प्रदायिक राजनीति की उत्पत्ति ही राष्ट्रवाद के खिलाफ हुई और राष्ट्रवादी आन्दोलन को कमजोर करने के लिए साम्प्रदायिकता ने नए-नए पैंतरे बदले। साम्प्रदायिकता अपने कुकृत्यों को छुपाने के लिए धर्म का आवरण तो ओढ़ती ही है, वह राष्ट्रवाद की व्याख्या भी धार्मिक आड़ लेकर करती है। धार्मिक मुददों का साम्प्रदायीकरण करके उसे इस तरह प्रस्तुत करती है, जैसे कि वह राष्ट्रीय सवाल हो। जैसे राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद के विवाद को इसी तरह उठाया गया। राम जन्म भूमि को प्राप्त करना राष्ट्रीय काम कहा गया, बाबरी मस्जिद का होना राष्ट्र पर कलंक कहा गया और राम मन्दिर के लिए ईंटों को 'राष्ट्र-शिलान्यास' कहा गया तो बाबरी मस्जिद ढ़हने को 'राष्ट्रीय भावनाओं का प्रकटीकरण' कहा गया। साम्प्रदायिक शक्तियां धर्म के साथ राष्ट्र को जोड़कर देखती हैं और दूसरे धर्मों-सम्प्रदायों के प्रति अपनी अमानवीय घृणा को राष्ट्रीय भावनाएं बताती हैं।

साम्प्रदायिक शक्तियां राष्ट्र पर धर्म की सर्वोच्चता की वकालत करती हैं। वे भारत को हिन्दू-राष्ट्र बनाने पर तुली हैं। गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'हिन्दू राष्ट्र' के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा, 'कुछ लोग 'हिन्दू राष्ट्र', 'हिन्दू राष्ट्र' चिल्लाते हैं। हमें क्षमा किया जाए, यदि हम कहें— नहीं, हम इस बात पर जोर दें— कि वे एक बड़ी भारी भूल कर रहे हैं और उन्होंने अभी तक राष्ट्र शब्द के अर्थ ही नहीं समझे। हम भविष्य-वक्ता नहीं, पर अवस्था हमसे कहती है कि अब संसार में हिंदू राष्ट्र नहीं हो सकता। क्योंकि राष्ट्र का होना उसी समय संभव है, जब देश का शासन देश वालों के हाथ में हो। यदि मान लिया जाए, कि आज भारत स्वाधीन हो जाए, या इंग्लैंड इसे औपनिवेशिक स्वराज्य दे दे, तो भी हिन्दू ही भारतीय राष्ट्र के सब कुछ न होंगे और जो ऐसा समझते हैं— हृदय से या केवल लोगों को प्रसन्न करने के लिए वे भूल कर रहे हैं और देश को हानि पहुँचा रहे हैं। वे लोग भी इसी प्रकार की भूल कर रहे हैं जो टर्की या काबुल या मक्का या जेद्दा का स्वप्न देखते हैं, क्योंकि वे उनकी जन्म-भूमि नहीं और इसमें कुछ भी कटुता नहीं समझी जानी चाहिए यदि हम यह कहें, कि उनकी कब्रें इसी देश में बनेंगी और उनके मर्सिये—यदि वे इस योग्य होंगे तो—इसी देश में गाए जाएंगे।'[2]

धर्म को जिन राष्ट्रों ने सर्वोच्चता दी है उनमें कट्टरता व पिछड़ापन मौजूद है, जैसे पाकिस्तान, बंगलादेश और अरब देश। इन देशों के शासक अपनी जनता के साथ कैसा सलूक करते हैं और उनका शासन कितना 'धार्मिक राष्ट्रवादी' होता है उसका पता अफगानिस्तान के तालिबानों और

पाकिस्तान के फौजी-मुल्ला गठजोड़ शासन से लगाया जा सकता है। कमाल की बात तो यह है कि साम्प्रदायिक लोग हमेशा इन्हीं देशों को आदर्श मानकर 'हिन्दू राष्ट्र' बनाने का तर्क देते हैं और जोर देकर कहते हैं कि जब पाकिस्तान इस्लाम के आधार पर बना है तो भारत हिन्दू राष्ट्र होना चाहिए। यह बात उनके जेहन से बाहर होती है कि पाकिस्तान के मुस्लिम राष्ट्र ने अपनी मुस्लिम जनता के लिए कौन से गुल खिला दिए हैं? नेपाल हिन्दू राष्ट्र है तो क्या नेपाल हमारे लिए आदर्श हो सकता है? कभी नहीं। साम्प्रदायिक शक्तियों द्वारा कथित धर्म के आधार बने राष्ट्र में और राष्ट्रवाद में सभी लोगों के लिए समानता की भावना नहीं होती। वे एक विशेष समूह के वर्चस्व की वकालत करते हैं जिससे समाज में कभी भी शांति स्थापित नहीं हो सकती। किसी भी राष्ट्र की शांति व एकता के लिए जरूरी है कि उसमें रहने वाले सभी समुदायों व वर्गों को विकास के उचित अवसर मिलें व सबमें बराबरी की भावना विकसित हो। धर्म, जाति, भाषा या अन्य किसी कारण से किसी के साथ भेदभाव करना राष्ट्रीय हितों के प्रतिकूल तो है ही मानवीय-गरिमा के प्रतिकूल भी है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विचारक गुरु गोलवलकर ने 'वी आर अवर नेशनहुड डिफाइंड' में इसे बताया कि 'हिन्दुस्तान में विदेशी नस्लों को हिन्दू-संस्कृति तथा भाषा को अपनाना होगा, हिन्दू धर्म का आदर करना तथा उसके सामने सिर झुकाना सीखना होगा, हिन्दू-धर्म व संस्कृति यानी हिन्दू-राष्ट्र के अधीन ही हो कर वे रह सकते हैं। उनका कोई दावा नहीं होगा। कोई विशेषाधिकार नहीं होंगे और कोई अतिरिक्त सुविधाएं हासिल करना तो दूर रहा, नागरिकों के अधिकार तक नहीं होंगे। उनके लिए और कोई रास्ता नहीं है और न ही होना चाहिए। हमारा एक प्राचीन राष्ट्र है और हमें अपने यहाँ बसे विदेशियों से वैसे ही व्यवहार करना चाहिए, जैसे प्राचीन राष्ट्र करते हैं।'

साम्प्रदायिक शक्तियां 'राष्ट्र' की समर्थक कभी नहीं रहीं इसलिए अपने राष्ट्रवादी होने के लगातार ढ़ोल पीटे जाने के बावजूद भी जनता उनको इस रूप में स्वीकार नहीं करती, इसलिए वे स्वयं को राष्ट्रवाद के बजाय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का समर्थक बताती हैं। यदि पूछा जाए कि यह 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' क्या है और इसमें किस संस्कृति की बात हो रही है तो उनका साम्प्रदायिक, पुरुष-प्रधान व सवर्ण-वर्चस्व के हावी होने की बात स्पष्ट हो जाती है। आज भी साम्प्रदायिक शक्तियां साम्राज्यवाद के आगे घुटने टेकती हैं। जब वे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से साम्राज्यवादी शोषण व लूट के लिए पलकें बिछाती हैं तो अपने को राष्ट्रवादी कैसे कह सकती हैं।

भारतीय इतिहास, परम्परा व समाज में धर्म के आधार पर राष्ट्र-निर्माण के तत्व मौजूद नहीं हैं बल्कि भारतीय इतिहास व परम्पराओं में मिली-जुली

संस्कृति व धर्म की परम्पराएं फली-फूली हैं। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र निर्माण क सशक्त परम्पराएं यहां मौजूद रही हैं। नोबेल पुरस्कार विजेता समाज-अर्थशास्त्र अमर्त्य सेन ने इस पर विचार करते हुए लिखा कि 'हिन्दुओं और मुसलमान के 'दो राष्ट्र' होने के विचार का, भारतीय साहित्य और संस्कृति में शायद ही कोई आधार खोजा जा सकता है। समकालीन भारतीय विरासत में इस्लामी प्रभाव, हिन्दू और अन्य परम्पराओं से घुले-मिले हुए हैं, जैसा कि साहित्य, संगीत, चित्रकला, वास्तुकला और दूसरे अनेक क्षेत्रों में बड़ी आसानी से देखा जा सकता है। सवाल सिर्फ इतना नहीं है कि भारतीय संस्कृति में मुस्लिम लेखकों, संगीतकारों, चित्रकारों आदि ने इतने सारे और इतने बड़े-बड़े योगदान किये हैं, बल्कि सवाल यह भी है कि उनकी कृतियां हिन्दुओं की कृतियों के साथ पूरी तरह घुली-मिली हुई हैं। सच तो यह है कि इस्लामी विचारों और मूल्यों के संपर्क में आने से, हिन्दू धार्मिक विश्वासों और आचारों पर भी जबर्दस्त असर पड़ा था .... हिन्दू राष्ट्रवाद के विचार को चलाने के लिए, भारतीय मुसलमानों की भारतीयता को कम करके पेश किया जाता है। लेकिन, वास्तव में इस तरह का दृष्टिकोण अपनाये जाने का कोई भी तर्कसंगत आधार नहीं है— न नस्ली, न राजनीतिक, न ऐतिहासिक, न सांस्कृतिक और न साहित्यिक।'[3]

जब राष्ट्रवादी शक्तियां कमजोर पड़ती हैं तो साम्प्रदायिक शक्तियां स्वयं को राष्ट्रवादी घोषित करके उनका स्थान लेने की कोशिश करती हैं और कई बार कामयाब भी हो जाती हैं। भारत में आंतकवाद व अलगाव की समस्या ने जोर पकड़ा। असम, पंजाब और काश्मीर में अलगाववादी शक्तियों ने राष्ट्रीय एकता के सामने खतरा पैदा कर दिया तो साम्प्रदायिक शक्तियों को एक नया आधार मिला और उन्होंने 'धर्म खतरे में है' की तरह 'देश खतरे में है' का नारा लगाना शुरू किया और इस बात को इतना उछाला कि वे सबसे बड़े राष्ट्रवादी नजर आएं। इस बात ने लोगों में इनकी प्रतिष्ठा को बढ़ाया। साम्प्रदायिक शक्तियां हमेशा युद्ध का और युद्धोन्माद का समर्थन करती हैं, सेना और परमाणु विस्फोट समेत आधुनिक हथियारों के भंडारण की वकालत करती हैं और पड़ोसी देश पर हमला करने के लिए अखबारों, समाचारपत्रों में बयान व टिप्पणी देती रहती हैं जिससे वे जनता की नजरों में राष्ट्रवादी बनी रह सकें।

ध्यान देने योग्य बात है कि ऐसे 'राष्ट्र' की परिकल्पना में आम जनता व उसके हित शामिल नहीं होते। साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद के व राष्ट्र की जनता के हित परस्पर विपरीत हो जाते हैं। पाकिस्तान ने धर्म को महत्व दिया और उसमें आज तक तीन 'अ' का शासन है यानी आर्मी, अल्लाह, अमेरिका।

वहां की सरकार जनता के हितों की कोई परवाह नहीं मानती। हिन्दू 'राष्ट्र' भी भारत के सभी लोगों की आशा-आकांक्षा का प्रतीक नहीं है, बल्कि चुनिन्दे उच्चवर्गी हिन्दुओं के लिये ही मायने रखता है। इस हिन्दू राष्ट्र में देश के दलितों, पिछड़ी जातियों-जनजातियों, अल्पसंख्यकों और महिलाओं का प्रतिबिम्ब नहीं है जो कि इस देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा हैं। हिन्दू राष्ट्र की इस संकल्पना में (अ) अल्पसंख्यकों के लिए न कोई विशेषाधिकार है और न कोई हक। उन्हें हिन्दू राष्ट्र में पूरी तरह मातहत बनकर रहना पड़ेगा। (ब) महिलाओं को 'आदर्श' माता, बहन या पत्नी की भूमिका निभाते हुए पति, पिता या पुत्र के अधीन रहना पड़ेगा। (स) कामगारों को मालिकों को अपने घर का मुखिया मानकर अपने सभी अधिकारों को तिलांजलि देकर उत्पादन करते रहना होगा। (द) दलितों को अपने आरक्षण को त्यागकर गुणवत्ता के मापदंड को स्वीकार करना होगा ताकि उच्चवर्गीयों के लिए नौकरियों में एकाधिकार और समाज में विशेषाधिकार का मार्ग सुलभ हो सके।[4]

धर्म-आधारित राष्ट्र की संकल्पना कितनी मिथ्या और खोखली है, इसको पाकिस्तान के संदर्भ में समझा जा सकता है। पाकिस्तान का निर्माण धर्म के आधार पर हुआ, लेकिन जल्दी ही उसके दो टुकड़े हो गए। एक ही धर्म को मानने के बावजूद भी उनमें एकता नहीं रह सकी। इसी से स्पष्ट है कि धर्म किसी राष्ट्र के लिए केन्द्रीय तत्त्व नहीं हो सकता। धर्म को राष्ट्र के अन्य हितों से ऊपर रखना और राष्ट्रीय-हितों में जन-हितों को शामिल न करना सच्चा राष्ट्रवाद नहीं है। सच्चा राष्ट्रवादी वही है जो अपने राष्ट्र के लोगों की भलाई के लिए सोचता है व उसके अनुरूप कार्य करता है।

संदर्भ

1. सामाजिक क्रांति के दस्तावेज; (भाग-1); शंभुनाथ (सं.); पृ.-620 ; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली ; 2004

2. सामाजिक क्रांति के दस्तावेज (भाग-1); शंभुनाथ (सं.); पृ. 621-622; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2004

3. साम्प्रदायिकता और संस्कृति के सवाल; सहमत प्रकाशन, दिल्ली; (अमर्त्य सेन के लेख: धर्मनिरपेक्ष भारत के लिए चुनौतियां); पृ.-53-54

4. धर्मनिरपेक्षता की दिशा; अजित मुरिक्न (सं.); पृ. 50; विकास अध्ययन केन्द्र (मलाड), मुम्बई; 1999

साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा

साम्प्रदायिक हिंसा का साम्प्रदायिकता से गहरा ताल्लुक होते हुए भी दोनों एक नहीं हैं। साम्प्रदायिकता की विचारधारा या साम्प्रदायिक चेतना साम्प्रदायिक हिंसा का कारण बनती है तो साम्प्रदायिक हिंसा साम्प्रदायिकता या साम्प्रदायिक चेतना को बढ़ावा देती है। साम्प्रदायिक हिंसा तो साम्प्रदायिक विचारधारा-चेतना की अत्यधिक सघन अभिव्यक्ति है। साम्प्रदायिक हिंसा अचानक नहीं होती बल्कि साम्प्रदायिक-शक्तियों की पूर्व-योजना का परिणाम होती हैं, बिना साम्प्रदायिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार के साम्प्रदायिक हिंसा नहीं पनप सकती। साम्प्रदायिक हिंसा व दंगे साम्प्रदायिकता का कारण नहीं बल्कि परिणाम होते हैं और हिंसा व दंगों की सघनता व प्रसार से इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है कि साम्प्रदायिक विचारधारा लोगों में कितनी गहरे तक घर कर गई है। हाँ यह बात बिल्कुल सही है कि जब साम्प्रदायिक हिंसा व दंगे होते हैं तो साम्प्रदायिक शक्तियां खुले आम अपना खूनी खेल खेलती हैं और साम्प्रदायिक चेतना के प्रसार में साम्प्रदायिक हिंसा बहुत बड़ी भूमिका अदा करती है।

साम्प्रदायिक हिंसा और साम्प्रदायिकता से निपटने के तरीके भी अलग-अलग हैं। साम्प्रदायिकता के खिलाफलड़ाई तो विचारधारात्मक लड़ाई है और दूरगामी प्रक्रिया है। जिसमें सरकार के साथ-साथ समाज में मौजूद धर्मनिरपेक्ष व साम्प्रदायिक सद्भाव चाहने वाली ताकतों को मिलकर लड़ने की जरूरत है साम्प्रदायिकता के खिलाफ विचारधारात्मक संघर्ष की आवश्यकता है। साम्प्रदायिकता की राजनीति समाज, अर्थव्यवस्था, धर्म या अन्य सामाजिक मुद्दों पर क्या विचार प्रकट करती है। उसके आक्रामक मिथ्या प्रचार को सही संदर्भ में सही तथ्यों व तर्कों के साथ प्रस्तुत करके ही उसके जहर से बचा जा सकता है, लेकिन साम्प्रदायिक हिंसा तो एक आपात स्थिति की तरह है जिस पर तत्काल काबू पाया जाना निहायत जरूरी है और इसमें सबसे बड़ी भूमिका राज्य-तंत्र ही निभा सकता है। यदि राज्य तंत्र चाहे तो साम्प्रदायिक हिंसा पर तुरन्त नियंत्रण किया जा सकता है, लेकिन यदि राज्य तंत्र न चाहे तो यह बहुत लम्बी खिंच जाती है। पश्चिम बंगाल का उदाहरण लिया जा सकता है क्योंकि वहां की वामपंथी राज्य सरकार साम्प्रदायिकता को रोकने के लिए

कटिबद्ध है तो वहां असल में तो हिंसा भड़कती नहीं, यदि भड़कती है तो उसे तुरन्त दबा दिया जाता है। दूसरी तरफ मुम्बई का उदाहरण है जहां दिसम्बर 1992 व जनवरी 1993 में लम्बे समय तक हिंसा जारी रही क्योंकि राज्य सरकार की हिंसा को रोकने मे कोई दिलचस्पी नहीं थी और जब राज्य सरकार ने हिंसा रोकने की इच्छा-शक्ति जाहिर की तो दंगों पर काबू पा लिया गया। 2002 मे गुजरात की मोदी सरकार के रवैये को देखा जा सकता है। यहां सरकार ने न तो हिंसा को रोका, न उदासीन रही, बल्कि सरकारी मशीनरी का सहारा लेकर दंगों को भड़काने में मदद की। इस तरह कहा जा सकता है कि राजनीतिक इच्छा-शक्ति के बिना साम्प्रदायिक हिंसा रोकना असंभव नहीं, तो बहुत कठिन कार्य है। बिहार का उदाहरण लिया जा सकता है। लालू प्रसाद यादव ने पंन्द्रह सालों तक शासन किया, जिस दौरान बिहार राज्य में प्रशासन की हालत बहुत खराब रही, आमतौर पर अपराध व हिंसा, छीना-झपटी की घटनाएं दूसरे राज्यों से अधिक हुईं। पर वहां इन वर्षों में साम्प्रदायिक दंगे नहीं भड़के। दूसरी बातों में लालू प्रसाद की चाहे जितनी भी कोई आलोचना-निंदा कर सकते हैं, लेकिन साम्प्रदायिक दंगे न होने देने के लिए वे कटिबद्ध रहे। राजनीतिक इच्छा शक्ति का होना हिंसा पर काबू पाने के लिए निहायत जरूरी है। दूसरी प्रशासन की समझदारी व चुस्ती पर भी दंगों को व हिंसा पर काबू पाना काफी कुछ निर्भर करता है। यदि कोई प्रशासनिक अधिकारी दंगों पर काबू पाना चाहता है तो वह स्थानीय निवासियों की मदद लेकर ऐसा कर सकता है लेकिन यदि किसी में यह प्रतिबद्धता ही नहीं है तो वह परिस्थितियों का दास बन जाता है और उसकी कमजोरी व प्रशासनिक अकुशलता का लाभ उठाकर साम्प्रदायिक शक्तियां अपना उल्लू सीधा करती हैं।

साम्प्रदायिक हिंसा व दंगों के दौरान साम्प्रदायिक शक्तियां तरह-तरह की योजनाएं बनाती हैं और हिंसा को भड़काने के लिए प्रयासरत रहती हैं। इसके लिए अफवाहें फैलाई जाती हैं। ऐसी अफवाहें फैलाई जाती हैं जिससे कि लोग डर जाएं, शक का वातावरण बन जाए और भावनात्मक रूप से उत्तेजित हों। ऐसी अफवाहें आम होती हैं कि अमुक समुदाय / सम्प्रदाय के लोगों ने 'पानी मे जहर मिला दिया', 'दूध में जहर मिला दिया', 'महिलाओं से बलात्कार किया' उनकी 'छाती काटकर चौराहे पर सजा दी', 'अमुक सम्प्रदाय के लोग एक जगह इकट्ठा' हो गये हैं', 'उनके पास तरह-तरह के हथियार हैं' और 'वे हमला करने आ रहे हैं।' इस तरह आम लोगों के मन में दशहत और डर पैदा करके उनकी सोचने-समझने की शक्ति को लगभग समाप्त कर दिया जाता है। ऐसी अफवाहें फैलाकर लोगों केा इतना डरा दिया जाता है कि वे रात-रात भर सो नहीं पाते, जागते रहते है, बेचैन होते हैं। इस उत्तेजना की

हालत में, अपने गुस्से और नफरत को निकालने के लिए उनको एक शिकार चाहिए और वे हिंसा में शामिल हो जाते है। जब व्यक्ति एक बार हिंसा की कार्रवाई में शामिल हो जाता है तो उसको प्रतिक्रिया का डर पैदा हो जाता है। प्रतिक्रिया का यह डर उसकी हिंसा को औचित्य प्रदान करता है। हिंसा का यह दुष्चक्र है। आम लोगों की चेतना पर डर इतना छा जाता है कि वे साम्प्रदायिक लोगों के आगे समर्पण कर देते हैं और उन्हें अपना रक्षक मान लेते हैं। अपनी सुरक्षा के बदले में इन साम्प्रदायिकों को धन भी देते हैं जिसका प्रयोग और हिंसा फैलाने में किया जाता है।

हिंसा की अपनी भाषा होती है जिसे साम्प्रदायिक शक्तियाँ खूब प्रयोग करती हैं और हिंसा के दौरान समाचार पत्र भी इसकी गिरफत में आ जाते हैं। 'दुश्मनों को नानी याद दिला दी', 'मां का दूध' याद करवा दिया आदि भावनात्मक भाषा का प्रयोग किया जाता है। पूरी योजना के तहत ऐसे लोगों को हतोत्साहित किया जाता है, जो ताकत की, शौर्य की भाषा नहीं बोलता। जो शांति की, सद्भाव की बात करता है उसे 'कायर' 'चूड़ी पहनकर बैठ जाओ' कहकर अपमानित करके अलग-थलग करने की कोशिश करते हैं इसलिए साम्प्रदायिक हिंसा के दौरान औरतें, बच्चे, बूढ़े और विकलांग सबसे आसान निशाना होते हैं और यही इस हिंसा का शिकार अधिक होते हैं।

साम्प्रदायिक हिंसा साम्प्रदायिकता की विचारधारा को बढ़ावा देती है, इसलिए साम्प्रदायिक शक्तियां हिंसा को बढ़ावा देने के लिए तरह-तरह के आयोजन करती हैं। ऐसे देवताओं की छवियां लोगों के सामने प्रस्तुत करती हैं जो हिंसा के लिए विख्यात हैं जैसे काली देवी को शक्ति की देवी के तौर पर प्रतिष्ठित किया जाता है। त्रिशूल और तलवार बांटने के भव्य उत्सव आयोजित किए जाते हैं। साम्प्रदायिक शक्तियां हिंसा का बाकायदा प्रशिक्षण प्रदान करती हैं।

असगर अली इंजीनियर[1] ने साम्प्रदायिक दंगों के कारणों पर विचार करते हुए मुख्यत: दो श्रेणियों में विभाजित किया है। एक सामान्य कारण, दूसरे विशिष्ट कारण। सामान्य कारण विचारधारात्मक होते हैं, जिनका फैलाव राष्ट्रीय स्तर तक होता है। सामान्य कारणों में समाज का असमान विकास व सीमित संसाधनों का होना मुख्य है। अल्पविकसित समाज में असमान विकास से अन्तर-सामुदायिक वर्गों का विकास नहीं हो पाता। कम विकसित समुदाय के उच्च वर्ग में तथा अपेक्षाकृत विकसित समुदाय के उच्च वर्ग में प्रतिस्पर्धा की भावना जन्म लेती है। उच्चवर्ग अपनी शक्ति बढाने के लिए अपने समुदाय के लोगों का समर्थन जुटाने के लिए अपने आर्थिक विकास की मांगों को धार्मिक-साम्प्रदायिक ढंग से उठाता है। इतिहास का मिथकीकरण करके,

अतीत का गौरवगान करके तथा दूसरे समुदाय के प्रति नफरत फैलाकर साम्प्रदायिक चेतना का निर्माण करता है। असमान विकास के नकारात्मक प्रभाव के कारण असुरक्षा महसूस करते समुदाय को धर्म मनोवैज्ञानिक राहत प्रदान करता है, जिससे कि वह अंधविश्वास, रूढ़ियों व पिछड़ेपन में फंस जाता है और साम्प्रदायिक तत्त्वों की चपेट में आ जाता है।

किसी कस्बे विशेष में साम्प्रदायिक तनाव, कुछ स्थानीय मुद्दों को लेकर होता है। साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त पर विचार करने वाले अक्सर इन स्थानीय मुद्दों के महत्त्व को अनदेखा करते हैं, इन स्थानीय कारणों को हम विशिष्ट कारण कहते हैं। साम्प्रदायिक हिंसा के कई मामलों में स्थानीय कारणों ने मुख्य भूमिका निभाई है। स्वतन्त्रता-पूर्व समय में स्थानीय मुद्दे, मस्जिद के सामने संगीत बजाने और गौ-हत्या तक सीमित थे, यद्यपि इन्होंने अभी भी अपनी वैधता नहीं खोई, लेकिन बदली सामाजिक-आर्थिक स्थिति में साम्प्रदायिक परिदृश्य पर नए कारण भी उभरे हैं। इनमें दो सम्प्रदायों के व्यापारी या छोटे निर्माताओं के बीच प्रतिद्वन्द्विता, तस्करी, अवैध हथियार, शराब या इसी तरह की अन्य समाज-विरोधी गतिविधियों में शामिल दो गिरोहों के बीच प्रतिस्पर्धा, स्थानीय औद्योगिक रईसों द्वारा कुछ साम्प्रदायिक मुद्दे उभारकर ट्रेड यूनियनों को कमजोर करने की योजना, स्थानीय निकायों या विधान-सभाओं या संसदीय सीटों के चुनाव आदि मुख्य हैं।

1981 में बिहार शरीफ में मुस्लिम कब्रिस्तान की कुछ जमीन थी जो बेकार पड़ी थी। वहां आलू की खेती खूब होती थी। कोल्ड स्टोर के बनने से जमीनों की कीमतें बहुत बढ़ीं। इस जमीन को लेकर स्थानीय यादवों और मुसलमानों में दंगा भड़क गया। इसी तरह गोधरा में गांछी मुसलमानों व सिन्धियों के बीच ट्रांसपोर्ट के व्यापार को लेकर प्रतिस्पर्धा थी और रेलवे-स्टेशन रोड पर साथ-साथ खोखे (दुकान) बनाने का विवाद साम्प्रदायिक दंगों में परिवर्तित हो गया। अलीगढ़ में ताला-उद्योग और मुरादाबाद में तांबा-उद्योग की प्रतिस्पर्धा के कारण साम्प्रदायिक तनाव हुआ।

साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त को विकसित करने के लिए साम्प्रदायिक स्थिति की कुछ स्थानीय विशेषताओं को समझना जरूरी है। अधिकांश दंगे मध्यम आकार के कस्बों में (क्योंकि ऐसे शहरों में छोटे दुकानदार अक्सर रूढ़िवादी होते हैं और साम्प्रदायिक प्रभाव की ओर उनका झुकाव रहता है) होते हैं। जिन कस्बों में मुस्लिम आबादी 20 से 50 प्रतिशत होती है वे अत्यधिक दंगा संवेदन क्षेत्र हैं। जिन कस्बों में मुसलमान व्यापारी वर्ग के रूप में होता है और वह हिन्दू व्यापारी वर्ग के एकाधिकार को चुनौती देता है वे कस्बे साम्प्रदायिक दंगों की दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। इसके

साथ ही जिन कस्बों का साम्प्रदायिक तनाव का इतिहास है वे और भी अधिक संवेदनशील होते हैं। इन बातों को ध्यान में रखकर आसानी से समझा जा सकता है कि मुरादाबाद, अलीगढ़, मेरठ, जमशेदपुर, बनारस, भिवंडी, मालेगांव, पुराना हैदराबाद शहर आदि में साम्प्रदायिक दंगों की घटनाएं बार-बार क्यों घटती हैं। हालांकि इसका यह अर्थ नहीं है कि बड़े नगरों या मुम्बई जैसे महानगर दंगों के लिए संवेदनशील नहीं हैं। बाबरी मस्जिद गिरने के बाद मुम्बई और कलकत्ता में जो घटित हुआ, उसे हम सब जानते हैं। मुम्बई में सांप्रदायिक दंगे प्रचण्डता से फैले। वास्तव में मुम्बई में 1984 में भी दंगे हुए थे। शिवसेना के उभार से मुम्बई अत्यधिक दंगा-संवेदन क्षेत्र बन गई है। हालांकि यहां हम मध्यम आकार के शहरों में साम्प्रदायिकता को हवा देने वाले कुछ कारणों पर प्रकाश डालेंगे।

वोट आधारित लोकतन्त्र में भारी अनुपात में अल्पसंख्यक आबादी वाले शहरों में अभिजात वर्ग के बीच राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता से साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है, क्योंकि दोनों सम्प्रदायों के अभिजात वर्ग साम्प्रदायिक पहचान के आधार पर मतदाताओं को रिझाते हैं और उनको अपने पीछे एकत्रित करने की कोशिश करते हैं। मेरठ में लगभग 40 प्रतिशत मुसलमान हैं। 1982 के मेरठ दंगों में मन्दिर-मजार विवाद केवल दो अभिजात वर्गों की राजनीतिक आकांक्षाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति थी। अपने चुनावी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए योजनाबद्ध प्रचार के जरिये हिंदुओं की मानसिकता पर प्रभाव डालने की कोशिश की गई।

साम्प्रदायिक दंगों में आपराधिक गिरोहों की भूमिका में वृद्धि हुई है। बड़ौदा के दंगे इसका क्लासिक उदाहरण हैं। अवैध शराब के तस्करी में लिप्त हिन्दू और मुसलमान दो गिरोहों के बीच प्रतिद्वन्द्विता सितम्बर-अक्तूबर 1982 में साम्प्रदायिक दंगों के रूप में फैली। शिव कहार के नेतृत्व वाले एक गिरोह पर सत्ताधारी कांग्रेस के एक वर्ग का वरदहस्त था। कथित तौर पर सत्ताधारी पार्टी का यह वर्ग इन तत्वों को प्रोत्साहित कर रहा था। यह भी ध्यान देने की बात है कि आजकल चुनावों में जीत हासिल करने के लिए राजनीतिज्ञों को अपराधियों से धन और बाहुबल दोनों चाहिए। इसके बदले में वे इन गिरोहों को किसी भी कानूनी कार्रवाई से छूट दिलाते हैं। मुरादाबाद और जमशेदपुर के दंगों में भी समाज-विरोधी तत्वों का जुड़ाव जग जाहिर है। इन अनुभवसिद्ध आंकड़ों का यदि कोई संकेत है तो यही कि भविष्य में यह खतरा और बढ़ेगा। सबसे खराब यह बात है कि अपराधी-गिरोह बहुत तेजी से स्वतन्त्र सत्ता ग्रहण कर रहे हैं। राजनीतिज्ञों को उनकी उतनी ही जरूरत है जितनी कि उनको राजनीतिज्ञों की है। इसे अपराध का राजनीतिकरण कहा जाए या राजनीति का

अपराधीकरण। अपराध जगत के कुछ शक्तिशाली तत्त्व राजनीति में भाग ले रहे हैं। कहने की जरूरत नहीं कि यह बहुत ही खतरनाक जुड़ाव है।

साम्प्रदायिक दंगों में गरीब लोगों का सबसे अधिक नुकसान होता है चाहे वे किसी धर्म या सम्प्रदाय से सम्बन्धित हों। यद्यपि यह बात भी सही है कि अल्पसंख्यक वर्ग का अधिक नुकसान होता है लेकिन होते वे भी गरीब ही हैं। दंगों से उतपन्न अशांति व कर्फ्यू के कारण जो दिहाड़ीदार है, मजदूरी करता है, छोटा-मोटा काम करता है जैसे रिक्शा चलाना, फलों की रेहड़ी लगाना आदि उसके सब काम बंद हो जाते हैं और जो व्यक्ति हर रोज कमाकर खाता है वह भूखे मरने के कगार पर पहुंच जाता है। दंगों में दुकानों व फैक्टरियों पर हमला करके नुकसान पहुंचाया जाता है जिससे उसमें काम करने वाले लोग बेरोजगार हो जाते हैं। उच्चवर्ग के लोग बड़ी चालाकी से निम्नवर्ग के लोगों को अपनी साम्प्रदायिक रणनीति के जाल में फंसा लेते हैं और उनको दूसरे धर्म के गरीबों के खिलाफ हिंसा करने के लिए तैयार कर लेते हैं। सामान्य दिनों में कोई फैक्टरी या दुकान का मालिक अपने नौकर से उतने सम्मान व शिष्टता से पेश नहीं आता जितना कि दंगों के दिनों में। साम्प्रदायिक हिंसा से जिनके राजनीतिक या आर्थिक हित पूरे होते हैं वे लोगों को भड़काने का काम करते हैं। दूसरे, जब हिंसा होती है तो गरीब व निर्दोष लोग एक-दूसरे के आमने-सामने होते हैं व एक-दूसरे को मारते हैं। तीसरे, दंगा करवाने वाले स्वार्थी लोग हिंसक परिस्थितियों से राजनीतिक-आर्थिक लाभ उठाने में जुट जाते हैं। जो लोग हिंसा में शामिल होते हैं वे अपराधिक घटनाओं में लिप्त होने के कारण गिरफ्तार कर लिए जाते हैं लेकिन हिंसा के आर्किटेक्ट-योजनाकारों का कुछ नहीं बिगड़ता।

साम्प्रदायिक दंगों में बहुत सी जानें गई हैं व भौतिक नुकसान हुआ है जिसका अनुमान समय समय पर भारत सरकार ने तथा स्वयंसेवी संगठनों ने लगाया है। प्रख्यात समाजशास्त्री असगर अली इंजीनियर ने साम्प्रदायिक सद्भाव को समर्पित अपनी संस्था के माध्यम से इन दशकों में देश में हुए लगभग सभी दंगों का अध्ययन किया है। उन्होंने अपने अध्ययन में चौंकाने वाले व चिन्ता में डाल देने वाले आंकड़े प्रस्तुत किए हैं, जिन पर नजर डालना समीचीन होगा।

तालिका

सांप्रदायिक घटनाओं की आवृत्ति और मौतें (1950-2002)[2]

वर्ष	घटनाएं	मारे गए	घायल हुए
1950	56	50	256
1954	84	34	512

1955	75	24	457
1956	82	35	575
1957	58	12	316
1958	40	7	369
1959	42	41	1344
1960	26	14	262
1961	92	108	593
1962	60	43	348
1963	61	26	489
1964	1070	1919	2053
1965	173	34	758
1966	144	45	467
1967	198	301	880
1968	346	133	1309
1969	519	674	2702
1970	521	298	1607
1971	321	103	1330
1972	210	70	1056
1973	242	72	1318
1974	248	87	1123
1975	205	33	890
1976	169	39	794
1977	188	36	1122
1978	230	108	1853
1979	304	261	2379
1980	421	375	2691
1981	319	196	2613
1982	470	238	3025
1983	500	1143	3652
1984	476	445	4836
1985	525	332	3751
1986	768	418	5389
1987	711	383	3860
1988	710	259	3103

1989	922	802	3871
1990	1421	1241	3913
1991	29	877	6370
1992	37	1972	13571
1993	33	960	4496
1994	8	39	450
1995	17	54	235
1996	20	24	28
1997	70	137	495
1998	600	207	2065
1999	52	43	248
2000	24	91	165
2001	27	56	158
2002	28	1173	2272
योग	13952	14686	68182

संदर्भ

1. आजाद भारत में साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक दंगे; असगर अली इंजीनियर ; पृ.-65 से 68 ; उद्‌भावना प्रकाशन, दिल्ली ; 2004

2. आजाद भारत में साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक दंगे; असगर अली इंजीनियर ; पृ.-153 से 154 ; उद्‌भावना प्रकाशन, दिल्ली ; 2004

साम्प्रदायिकता और साम्राज्यवाद

साम्प्रदायिकता और साम्राज्यवाद के संबंधों पर विचार करना कई लोगों को अजीब लग सकता है। वे सोच सकते हैं कि साम्प्रदायिकता तो हिन्दू-मुसलमान के बीच झगड़ा है फिर उसका साम्राज्यवाद से क्या वास्ता। लेकिन ध्यान देने की बात है कि साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है, साम्प्रदायिकता एक दृष्टि है जो समाज के हर पहलू पर अपना पक्ष थोपती है। समाज में घटित एक घटना का अन्य घटनाओं से किसी न किसी रूप मे संबंध होता है। समाज में मौजूद कोई भी विचारधारा या घटना निरपेक्ष नही होती। साम्प्रदायिकता और साम्राज्यवाद का बहुत गहरा रिश्ता है। बल्कि यहां तक कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता साम्राज्यवाद के हितों की ही पूर्ति करती है और साम्प्रदायिकता को फलने-फूलने के लिए साम्राज्यवाद अनुकूल वातावरण उपलब्ध करवाता है। साम्राज्यवाद का मतलब है एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के संसाधनों का शोषण। अंग्रेजी साम्राज्य ने भारत का जमकर शोषण किया और हालात यहां तक पहुंचे कि लोग भूखे मरने के कगार पर आ गए। साम्राज्यवाद ने अपने विस्तार के लिए अपने गर्भ से साम्प्रदायिकता को जन्म दिया और पालन पोषण किया; मानवता का खून पिला कर साम्प्रदायिकता के राक्षस को खूब मोटा किया।

अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने स्थायी-भूमि बंदोबस्त व व्यापार की ऐसी नीतियों को लागू किया, जिससे कि भारत के किसान व मजदूर तबाही के कगार पर आ गए और अंग्रेजी साम्राज्यवाद को खदेड़ने के लिए योजनाएं बनाने लगे। इसके परिणामस्वरूप 1857 का पहला स्वतंत्रता संग्राम हुआ। कुछ लोग इसे रजवाड़ों की पुनर्स्थापना का प्रयास भी कहते है, जो सही नहीं है। क्योंकि अंग्रेजों के खिलाफसेना के सिपाही और किसान लड़े थे। इन्होंने ही स्वतंत्रता संग्राम की शुरूआत की थी, सबको इस लड़ाई में शामिल करने के लिए राजे-रजवाड़ो को इसका नेतृत्व सौंपा था। साम्राज्यवाद की मार सभी लोगों पर पड़ी थी, चाहे वे हिन्दू थे या मुसलमान सबको बराबर रूप से सताया गया था, इसलिए सभी इकट्ठे मिलकर लड़े थे और इस ताकत को अंग्रेज पहचान चुके थे। इस बात का अनुमान लगा लिया था कि वे लम्बे समय तक शासन व लूट जारी नहीं रख सकते। इस ताकत को

कमजोर करने के लिए ही उन्होने भारत के लोगों की एकता व भाईचारे को तोड़ने की नई-नई चालें सोचनी आरम्भ कर दी। धर्म के आधार पर इनको लड़ाने की युक्ति काम कर गई। अंग्रेजों ने हिन्दू व मुसलमान दोनों समुदायों में से कुछ स्वार्थी लोगों को अपना मित्र बनाकर उनको इस में काम लगा दिया और इस राजभक्ति के बदले में अंग्रेजी शासन के दरबारों की शोभा बन गए और गाहे-बेगाहे इनाम इकराम पाते रहे। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान देश की जनता के प्रति गद्दारी की ऐतिहासिक मिसालें कायम की। साम्राज्यवाद का यह बच्चा हमेशा उसके प्रति वफादार रहा है। इसलिए साम्प्रदायिक शक्तियों से, जो कि आज अपने को देश की सबसे बड़ी रक्षक के तौर पर प्रस्तुत करती हैं, यदि यह पूछा जाये कि उनके संगठनों के किसी सदस्य या उनकी विचारधारा को मानने वाले को स्वतन्त्रता-संघर्ष के दौरान जेल हुई, फांसी हुई है, तो उनके लाख कोशिश करने पर एक भी ऐसा नाम नहीं है जिसको कि सिर उठाकर ले सकें। हां इसके विपरीत माफी मांगने वालों और अपने देश के स्वतन्त्रता सेनानियों के खिलाफगवाही देने वालों के नाम खूब मिल जायेंगे।

वे देश की जनता की एकता व भाई चारे को तोड़कर साम्राज्यवाद की मदद करते रहे और हिन्दू साम्प्रदायिकों व मुसलमान साम्प्रदायिकों ने मिलकर साम्प्रदायिकता की ऐसी मुहिम चलाई कि देश के दो टुकड़े हो गए। पाकिस्तान नाम का एक नया देश दुनिया के नक्शे पर उभर कर आया। विभाजन से आबादियां इधर की उधर गई। लाखों लोग उजड़कर शरणार्थी का जीवन जीने पर मजबूर हुए और हजारों लोग अपनों से बिछड़ गए हजारों लोग इन साम्प्रदायिक दंगों में मारे गए। जहां एक तरफआजादी का जश्न मनाया जा रहा था, वहीं, दूसरी ओर लाखों लोग उजड़ रहे थे और साम्प्रदायिक लोग अपना खूनी खेल खेल रहे थे।

आजादी के बाद भी साम्प्रदायिकता ने अपना साम्राज्यवाद के हितैषी का चरित्र नहीं छोड़ा। वह लगातार साम्राज्यवाद को बढ़ावा देनी वाली नीतियों का समर्थन करती रही है। चाहे देश की आर्थिक नीति हो या विदेश नीति इसके मामले में साम्प्रदायिक शक्तियों के वही विचार रहे हैं जो साम्राज्यवाद के हितों की रक्षा करते हों। साम्राज्यवाद हमेशा बड़ी पूंजी के माध्यम से देश की संप्रभुता को प्रभावित करता रहा है लेकिन जब से समाजवादी रूस का विघटन हुआ और पूरी दुनियां पर अमेरिका का एक छत्र राज हुआ तब से तो बिल्कुल खुल्लम-खुल्ला उसके साथ ही नहीं बल्कि उनसे एक कदम आगे बढ़कर साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के लिए कार्य कर रहे हैं।

हिन्दू बनाम हिन्दुत्व

'हिन्दू धर्म' और 'हिन्दुत्व' में कोई समानता नहीं है। दोनों एक दूसरे के इस अर्थ में विरोधी हैं कि 'हिन्दुत्व' शब्द ने 'हिन्दू धर्म' की मूल भावना को चोट पहुंचाई है। आर.एस.एस. गिरोह ने 'हिन्दू' धर्म और 'हिन्दुत्व' को एक-दूसरे के पयार्यवाची के रूप में इतना अधिक प्रचार किया है कि आम लोगों को इनमें अन्तर नजर नहीं आता। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि 'हिन्दुत्व' की साम्प्रदायिक विचारधारा को मानने वाले लोगों को 'हिन्दू-धर्म' के रक्षक व समर्थक के तौर पर मानने की गलती कर बैठते हैं इसलिए 'हिन्दू-धर्म' और 'हिन्दुत्व' के अन्तर को समझना निहायत जरूरी है।

'हिन्दू' शब्द लगभग हजार वर्ष से प्रचलन में है। इस शब्द का प्रयोग सिन्धु नदी के पार रहने वाले लोगों के लिए किया गया। वे 'स' शब्द का उच्चारण 'ह' करते थे। 'हिन्दू', 'हिन्दवी', 'हिन्दी' आदि शब्दों की उत्पत्ति का यही कारण है। उच्चारण के कारण पुराना शब्द नया रूप ले लेता है जैसे जब यहां अंग्रेज आए तो वे 'ठ' का उच्चारण 'ट' करते थे इसलिए वे 'ठाकुर' की जगह 'टैगोर' कहते थे और उसके बाद से ठाकुर की जगह टैगोर ही प्रचलन में है। इस तरह 'हिन्दू' शब्द की उत्पत्ति हुई। काफी समय 'हिन्दू' शब्द एक भौगोलिक पहचान के साथ जुड़ा रहा है।

भारत के महान चिंतक स्वामी विवेकानन्द ने इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि 'हमारी जाति और धर्म को व्यक्त करने के लिए एक शब्द 'हिन्दू' बहुत प्रचलित हो गया है। वेदांत धर्म से मेरा क्या अभिप्राय है, इसको समझाने के लिए इस 'हिन्दू' शब्द की किंचित व्याख्या करना आवश्यक है। प्राचीन फारस देश के निवासी सिंधु नदी के लिए 'हिन्दू' नाम का प्रयोग करते थे। संस्कृत भाषा में जहां 'स' आता है, प्राचीन फारसी भाषा में वही 'ह' रूप में परिणत हो जाता है इसलिए सिंधु का 'हिंदू' हो गया। तुम सभी लोग जानते हो कि यूनानी लोग 'ह' का उच्चारण नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्होंने 'ह' को छोड़ दिया और इस प्रकार हय 'इंडियन' नाम से जाने गए। प्राचीन काल में इस शब्द का अर्थ जो भी हो, अब इस हिंदू शब्द की, जो कि सिंधु नदी के दूसरे किनारे के निवासियें के लिए प्रयुक्त होता था, कोई सार्थकता नहीं है, क्योंकि सिंधु नदी के इस ओर रहने वाले सभी लोग एक धर्म के मानने वाले

नहीं हैं। इस समय यहां हिंदू, मुसलमान, फारसी, ईसाई, बौद्ध और जैन भी वास करते हैं।"

धर्म तो यहां पहले भी प्रचलित था, लेकिन इसके साथ हिन्दू शब्द बाद में लगा और यहां लोगों के धार्मिक विश्वासों के साथ जोड़ दिया। आज भी यदि पूछा जाए कि हिन्दू कौन है तो उसकी कोई स्पष्ट पहचान नहीं है बल्कि इसका उत्तर इस तरह दिया जाता है कि जो बौद्ध, जैन, मुस्लिम, ईसाई आदि धर्मों का अनुयायी नहीं हैं वह हिन्दू है। कमाल की बात है कि जो धार्मिक कर्मकांड़ों को जैसे यज्ञ, तिलक-माला, तीर्थ, व्रत, पूजा विधि आदि और धर्म के दार्शनिक पक्ष को (पुनर्जन्म, ईश्वर आदि) को भी नहीं मानता उसे भी हिन्दू की श्रेणी में गिना जाता है।

हिन्दुत्व' शब्द नया शब्द है जिसके प्रयोग को सौ साल भी नहीं हुए। 'हिन्दुत्व' शब्द को सबसे पहले वीर सावरकर ने प्रयोग किया और परिभाषा दी। वीर सावरकर ने इस शब्द का प्रयोग उस समय नहीं किया जब वे अग्रेजों के खिलाफलड़े और जेल गए बल्कि उस समय किया जब अपनी रिहाई के लिए अंग्रेजों से माफी मांगी और बदले में अंग्रेजों की मदद करने का आश्वासन भी दिया। 1924 में, वीर सावरकर ने अपनी पुस्तक में 'हिन्दुत्व' शब्द का प्रयोग किया व परिभाषा दी। अहमदाबाद (कर्णवती) में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के 19 वें अधिवेशन में उसकी व्याख्या की।

'आसिन्धु सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारत भूमिका। पितृभू: पुण्यभूश्चैक स वै हिन्दुरीति अभृत:।'

अर्थात सिन्धु सरिता से सिन्धु सागर तक फैले हुए प्रदेश को अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि मानता हो, वही सच्चा (सम्पूर्ण) हिन्दू है। यह परिभाषा बहुत ही चालकीपूर्ण ढंग से निर्मित की है जिसमें पितृभूमि का अर्थ है जन्मभूमि और पुण्यभूमि का अर्थ है व्यक्ति जिस देव को मानता है उसका पूजा स्थल या आस्था स्थल।

सवाल उठता है कि सावरकर ने 'हिन्दुत्व' शब्द का प्रयोग क्यों किया? इसके पीछे उनकी मंशा क्या थी? जबकि सावरकर की स्वयं की कोई धार्मिक आस्था नहीं थी, क्योंकि वे तो नास्तिक व्यक्ति थे और धार्मिक रूढ़िवाद के भी खिलाफ थे। इसलिए वे हिन्दू साम्प्रदायिकता के लिए कोई धार्मिक शब्द नहीं प्रयोग करना चाहते थे, उनकी मंशा थी कि साम्प्रदायिक अभियान में जैन, बौद्ध और सिक्खों को भी शामिल किया जा सके इसलिए ऐसी परिभषा गढ़ी जिसमें इनका समावेश हो सके। लेकिन यह परिभाषा किसी भी तरह से उचित नहीं है। इस परिभाषा को मान लेने से कई तरह की शंकायें जन्म ले सकती हैं।

क्या जापान, चीन, नेपाल आदि में रहने वाला हिन्दू अपने देशों के प्रति वफादार नहीं है और दूसरी तरफजिसकी पितृभूमि भारत नहीं या जो भारत में पैदा नहीं हुआ क्या वह हिन्दू नहीं हो सकता? अमेरिका, कनाड़ा, इंग्लैंड में पैदा होने वाले हिन्दुओं के बच्चे क्या 'सच्चे ' हिन्दू नहीं हैं?

बौद्ध धर्म की उत्पत्ति भारत में हुई लेकिन उसका प्रसार भारत के बाहर भी हुआ और आज बौद्ध धर्म को मानने वाले भारत से भी अधिक लोग दूसरे देशों में रहते हैं यदि इस सिद्धांत को मान लिया जाए तो क्या ये अपने देश के प्रति वफादार नहीं हैं? क्योंकि पितृभूमि तो बेशक अपना ही देश हो जहां वे रहते हैं, लेकिन उसकी पुण्यभूमि तो भारत में हैं।

'हिन्दुत्व' कतई धर्म नहीं है। यह एक राजनैतिक आंदोलन है जिसकी शुरूआत 1920 से शुरू हुई और जिसने पिछले बीस वर्षों से जोर पकड़ा है। यह हिन्दू राष्ट्र के लिए चलाया गया आन्दोलन है।'[2] संघ प्रचार करता है कि हिन्दुस्तान में पैदा होने वाला हर व्यक्ति हिन्दू है तो क्या पाकिस्तान में पैदा होने वाला हर व्यक्ति मुसलमान है? "हिन्दू' शब्द का महत्व राजनीतिक परिस्थिति के कारण बढ़ा है। काफी दिलचस्प बात है कि 1923-24 के बाद सावरकर ने कभी 'हिन्दुत्व' शब्द का प्रयोग नहीं किया और 1960-62 तक आर.एस.एस. ने भी 'हिन्दुत्व' शब्द का प्रयोग नहीं किया। आर.एस.एस. के गुरु माधव राव सदाशिव गोलवलकर के जो भी लेख या वक्तव्य प्रकाशित है उसमें कहीं भी 'हिन्दुत्व' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ। यह शब्द 1962 के आस-पास चर्चा में आया, जब आर.एस.एस. के राजनीतिक मुखौटे जनसंघ ने स्वयं को सेक्युलर घोषित किया।

संदर्भ

1. सामाजिक क्रांति के दस्तावेज; भाग-1; शंभुनाथ (सं.) ; पृ. 212; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2004

2.धर्मनिरपेक्षता की दिशा ; अजित मुरिक्न (सं.) ; पृ. 50 ; विकास अधययन केन्द्र (मालाड़), मुम्बई ; 1999

साम्प्रदायिकता और जातिवाद

साम्प्रदायिकता और जातिवाद दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, दोनों समाज में गैर बराबरी व एक समुदाय की दूसरे समुदाय पर वर्चस्व की विचारधारा को मानते हैं। साम्प्रदायिकता जातिवाद को और जातिवाद साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देता है। इनके संबंधों को जानना-समझना बहुत दिलचस्प भी है और जरूरी भी है। साम्प्रदायिक नेता, संगठन और दल भी उन्हीं पुरातन ग्रन्थों-शास्त्रें का तथा पौराणिक मिथकों का हवाला देते हैं जिसका कि जातिवाद को बढ़ावा देने वाले नेता, संगठन और दल। जाति-प्रथा हिन्दू समाज की विशेषता है जिसको मनुस्मृति नामक ग्रन्थ में व्याख्यायित-विश्लेषित किया है। मनु ने अपनी स्मृति में वर्ण-आधारित समाज की व्यवस्था दी है। जाति के वर्चस्व की विचारधारा का मूल आधार मनुस्मृति है तो हिन्दू साम्प्रदायिक संगठनों के लिए मनुस्मृति न केवल पूज्य-ग्रन्थ है बल्कि इसमें प्रदत व्यवस्था को लागू करने के मकसद को वे खुलेआम स्वीकारते हैं। भारत को 'हिन्दू-राष्ट्र' के रूप में बदल देने के लिए जोर लगा रहे लोगों से यदि पूछा जाए कि हिन्दू-राष्ट्र बनाकर वे क्या करेंगे तो उनके सामने होगा कि भारत के मौजूदा संविधान की जगह वे मनु-स्मृति के अनुसार समाज का निर्माण करेंगे। मनुस्मृति कुछ तथाकथित उच्च जातियों को विशेषाधिकार प्रदान करती है। उनका वर्चस्व दूसरी जातियों पर लादती है और अधिकांश लोगों को मानवीय अधिकारों व नागरिक अधिकारों से वंचित करती है। इसलिए जाति वर्चस्व को तोड़ने वाले, जाति-प्रथा को समाप्त करने वाले तथा समतामूलक समाज की स्थापना चाहने वाले चिंतकों-विचारकों, रचनाकारों ने मनुस्मृति के विधान की आलोचना की है। उसकी नैतिक व सर्वोच्च सत्ता को चुनौती दी है। जोतिबा फूले हो या भीमराव अम्बेडकर सभी समाज-सुधारकों ने जाति-प्रथा को मान्यता देने वाली पुस्तक मनुस्मृति को भारतीय समाज के विकास में सबसे बड़ी बाधा समझा है। अत: जातिवाद और साम्प्रदाायिकता के खिलाफ अलग-अलग संघर्ष नहीं बल्कि साम्प्रदायिकता व जातिवाद के विरुद्ध एकजुट संघर्ष ही दोनों को समाप्त कर सकता है। साम्प्रदायिकता और जातिवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह अलग-अलग समय पर अपने शिकार बनाती है और पकड़ में न आने वाली चालाकी से एक को दूसरे के खिलाफइस्तेमाल करती

हैं। अपने ही समाज में कुछ जातियों का वर्चस्व स्थापित करने के लिए और अधिकांश लोगों को सताने के लिए जाति का हथियार इस्तेमाल किया जाता है और अपने समुदाय से बाहर के लोगों पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए जाति-उत्पीड़ित लोगों की मदद लेकर साम्प्रदायिकता का हथियार इस्तेमाल किया जाता है। कमजोर व गरीब लोगों को आपस में बांटने व लड़वाने का यह ऐसा हथियार है जिसकी एक धार जातिवाद से पैनी की जाती है तो दूसरी धार साम्प्रदायिकता से।

साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने वाले नेताओं ने, संगठनों ने व राजनीतिक दलों ने कभी जातिवाद के खिलाफ अभियान नहीं चलाया। हां उनके लिए जटिल स्थिति अवश्य रही है कि उनको जातियों में बंटा हुआ, एक के ऊपर एक उच्च जाति वाला समाज भी चाहिए और साम्प्रदायिकता की राजनीति को बढ़ावा देने के लिए सभी जातियों को एक समुदाय की पहचान देने वाला मंच भी चाहिए। इसी बात को इसी तरह से भी कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिक शक्तियों को सामाजिक रूप से जातियों में विभाजित समाज चाहिए और राजनीतिक दृष्टि से सभी एक झण्डे के तले। साम्प्रदायिक शक्तियों का जाति-प्रथा के प्रति व निम्न कही जाने वाली जातियों के प्रति रवैये को जानने के लिए उन्हीं द्वारा जारी सामग्री को यहां देना उपयुक्त है।

'काफी समय से पहले मुद्रण माध्यम ने आर.एस.एस. के गुप्त परिपत्र नं. 411 की विषय सूची का रहस्योद्घाटन किया था। जो उसके कमांडरों तथा उपदेशकों द्वारा कार्यान्वित करने के लिए जारी किया था। अपनी पुस्तक 'दलितस् आफटर पार्टीशन' में डां. ओनील बिस्वास ने कथित परिपत्र के कुछ बिन्दु गिनाए हैं।[1] वे हैं:—

'आर.एस.एस. परिपत्र नं. 411 कमांडरों तथा उपदेशकों के लिए जारी किया गया है। यह निम्नलिखित कृत्यों के लिए है:—

2. अनुसूचित जाति तथा पिछड़ा वर्ग के लोगों को पार्टी में भर्ती करना है ताकि अम्बेडकरवादियों तथा मुसलमानों से लड़ने वाले स्वयं सेवक बन जाएं।

5. डाक्टरों तथा फार्मास्टिों को हिन्दुत्व की शिक्षा बदले की भावना से दी जाए ताकि उनकी मदद से मीयाद बाहर दवाएं अनुसूचित जातियों मुसलमानों और जनजातियों में बांटी जा सकें। शूद्रों, अतिशूद्रों, मुसलमानों, ईसाइयों आदि के नवजात शिशु टीके लगाकर पंगु बना दिए जाएं। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए रक्तदान शिविरों का दिखावा करना चाहिए।

8. अनुसूचित जाति, मुसलमान तथा ईसाई स्त्रियों को वेश्यावृति से जीवन जीने के लिए प्रोत्साहन तथा प्रेरणा जारी रखी जाए।

9. अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्ग के लोगों, मुसलमानों, ईसाइयों और विशेष रूप से अम्बेडकरवादियों को हानिकारक खाद्य-पदार्थों द्वारा पंगु बनाने की योजनाओं को त्रुटिहीन बनाया जाए।

10. अनुसूचित जाति तथा जनजाति के विद्यार्थियों द्वारा हमारी पसन्द से लिखा इतिहास पढ़ने पर विशेष ध्यान दिया जाए।

11. दंगों के दौरान मुसलमान तथा अनुसूचित जाति की स्त्रियों के साथ सामूहिक बलात्कार किया जाए। मित्रों और जान पहचान वालों तक को न बख्शा जाए। यह काम सूरत के नमूने पर होना चाहिए।

12. मुसलमानों, ईसाइयों, बौद्धों और अम्बेडकरवादियों के विरुद्ध लेखों के प्रकाशन की गति तेज की जाए। निबंध और लेख, अशोक को आर्य विरोधी सिद्ध करने के लिए लिखे जाएं।

13. हिन्दू तथा ब्राह्मण विरोधी सम्पूर्ण साहित्य नष्ट कर दिया जाए। दलितों, मुसलमानों, ईसाइयों और बौद्धों की तलाशी ली जाए। सतर्कता बरती जाए कि उनका साहित्य / लेख आम स्थानों पर न पहुंचे। हिन्दू साहित्य को पिछड़े वर्गों तथा अम्बेडकरवादियों पर लागू किया जाए।

14. अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के पिछले रिक्त पड़े आरक्षित पदों को भरने की मांग कदाचित पूरी न की जाए। उनकी सरकारी, गैर सरकारी तथा अर्ध सरकारी संस्थाओं में सेवा हेतु प्रवेश तथा पदोन्नति की मांग पर निगरानी रखी जाए और अस्वीकार कर दी जाए तथा हानिकारक टिप्पणियां देकर उनके सेवा के रिकार्ड को विकृत करके नष्ट कर दिया जाए।

15. अनुसूचित जातियों तथा पिछड़ा वर्ग के लोगों में पूर्वाग्रहों की जड़ें गहरी करने के उपाय किए जाएं।

16. समता एवं समानता सिखाने वाले साम्यवादियों, अम्बेडकरवादियों, इस्लामी मुदर्रिसों, ईसाई मिशनरियों और उनके पड़ोसियों पर जोरदार हमले शुरू किए जाएं।

17. अम्बेडकर की प्रतिमाओं पर अधिक प्रयास के द्वारा वार किए जाएं।

18. दलित तथा मुस्लिम लेखकों को पार्टी में भर्ती किया जाए और उनसे दलितों, आम्बेडकरवादियों और मुसलमानों के विरुद्ध निबंधों तथा साहित्य की रचना कराई जाए और उनको उपदेश दिया जाए। इस ओर विशेष ध्यान दिया जाए कि ये रचनाएं वांछित ढंग से छपें तथा उपदिष्ट हों।

19. हिन्दुत्व के विरोधियों की झूठे मुकाबले दिखाकर हत्या कर दी जाए। इस कार्य में पुलिस तथा अर्ध सैनिक बलों की सहायता हमेशा होनी चाहिए।

'1992 में बाबरी मस्जिद गिराये जाने के बाद उनके द्वारा भड़काये गए उन्माद के सहारे वर्ण व्यवस्था को मज़बूत करने की दृष्टि से आर.एस.एस. ने अपनी शाखाओं के लिए एक गुप्त सर्कुलर जारी किया था। उक्त सर्क्यूलर पुलिस के हाथ लग जाने के बाद सार्वजनिक हुआ। नागपुर से प्रकाशित दैनिक लोकमत के 22 जनवरी 1994 के संस्करण में यह सर्कुलर[2] प्रकाशित हुआ। इस सर्कुलर की भाषा इस प्रकार है:

'आपको पुराने कार्यक्रमों के अलावा कुछ नए अतिरिक्त कार्यभार सौंपे जा रहे हैं। कुछ कार्यों में संशोधन करने की जरूरत है। संरक्षकों एवं स्वयंसेवकों तक निम्नलिखित सूचना पहुंचाना आवश्यक है। अपनी प्रतिक्रिया मुख्यालय को भेजें। सूचना पहुंचाने के बाद यह पत्रक नष्ट कर दिया जाये।'

1. हथियार और विस्फोटक भरपूर मात्र में प्राप्त करें।

2. मुसलमान और अम्बेडकरवादियों के खिलाफ गैर सवर्ण हिन्दुओं (अवर्ण) को लड़ने के लिए प्रवृत (उकसायें) करें।

3. सरकारी पदाधिकारियों में हिन्दुत्व की भावना को महत्वाकांक्षी बनायें।

4. डॉक्टरों और दवा विक्रेताओं में हिन्दुत्व की भावना जगाई जाये जिससे वे अपनी कालबाह्य हानिकारक और फालतू दवायें ही अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े और मुसलमान ग्राहकों को बेचें।

5. अवर्ण (गैर सवर्ण) और पिछड़ों की बस्तियों में छोटे-छोटे बच्चों में ओम और जयश्रीराम शब्दों की लोकप्रियता बनायें।

6. हिन्दू विरोध (ब्राह्मण विरोध) करने वाले धर्मनिरपेक्षतावादियों के कार्यक्रमों का बहिष्कार करें।

7. पिछड़ी जाति की बस्तियों में दारू, नशीले पदार्थ, जुआ, लाटरी आदि के जरिये पैसा बटोरने में लगे व्यवसायियों की मदद करें।

8. मुसलमानें और गैर सवर्णों की लड़कियां छोटी उम्र में वेश्यावृत्ति करने लगें या देवदासी बन जायें, इसकी चेष्टा करें।

9. अपने स्वयंसेवकों, संगठनों से जुड़े शिक्षकों और दूसरे लोगों के जरिये गैर सवर्ण हिन्दुओं खासकर अम्बेडकरवादियों के स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों को ऐसे खाद्य पदार्थ दिए जायें जिससे उनका मानसिक, शारीरिक और बौद्धिक विकास कुन्द हो जाये।

10. अनुसूचित जाति, जनजाति समाज के छात्रें को अपने स्कूलों में अधिकाधिक प्रवेश दें और केवल अपने सिद्धांतों के मुताबिक इतिहास की शिक्षा दें।

11. मुसलमान, अम्बेडकरवादी और बौद्ध समाज को भड़काकर आपस में दंगा करवाने के लिए शहर के गुण्डों, पुलिस और हथियारबंद दलों की मदद लें।

12. दंगों के दौरान पैमाने पर मुसलमानों, गैर सवर्ण हिन्दुओं की औरतों पर सामूहिक बलात्कार करवाया जाये, जान पहचान या दोस्तीवाले लोग इस कार्य में अवरोध न बनें। इस मामले में सूरतकाण्ड को नमूना मानकर चलें।

13. गैर हिन्दुओं के धार्मिक स्थलों से लगी जमीनों पर देव प्रतिमा स्थापित करने का कार्यक्रम पूर्ववत जारी रखें। मदद के लिए मुख्यालय से संपर्क करें। पुराने चर्च, मस्जिद अथवा स्तूप के स्थान पर पूर्व हिन्दू मंदिर होने का दावा करने वाला साहित्य तैयार किया जाये।

14. तीव्रगति से मुसलमान-बौद्ध विरोधी साहित्य प्रकाशित किया जाये। सम्राट अशोक बौद्ध नहीं था। यह साबित करने वाला साहित्य तैयार करके प्रकाशित किया जाये।

15. हिन्दुत्व और ब्राह्मणविरोधी दलित साहित्य, अम्बेडकरी साहित्य और साम्यवादी साहित्य नष्ट करने की कोशिश की जाये। स्वयं लिखा गया अम्बेडकरी विचार और साहित्य ही गैर सवर्ण और पिछड़े लोगों में प्रसारित किया जाये।

16. सुनियोजित तरीके से अनुसूचित जाति, जनजाति का बैकलाग पूरा न होने दिया जाये।

17. राम के स्टिकर, कैलेण्डर, पैम्पलैट बड़े पैमाने पर तैयार करके वितरित किए जाएं। रामकथा और अखण्ड कीर्तनों का आयोजन और तेज गति से किया जाये।

18. गैर सवर्ण और पिछड़ी जातियों में अंधविश्वास और अंधश्रद्धा फैलाने की ओर विशेष ध्यान दें। इस कार्य में पहले की ही तरह बाबाओं और साधुओं-महाराजाओं की मदद ली जाये।

19. जैन, बौद्ध और सिखों को हिन्दू बताने का कार्य पूर्ववत चालू रखा जाये। जैन मंदिरों में ज्यादा से ज्यादा राम भक्ति, श्रीराम पूजा करवाई जाये और प्रगति की जानकारी मुख्यालय को दी जाये।

20. कम्युनिस्ट, गैर सवर्णों और शूद्रों पर पूर्ववत हमले जारी रखे जाएं।

21. मण्डलविरोधी आंदोलन शुरू रहने दिया जाये।

22. गैर सवर्णों, पिछड़ों की विभिन्न जातियों को परस्पर भड़काकर लड़ाने के लिए कूटनीति से काम लिया जाए।

23. अम्बेडकर के पुतलों की तोड़फोड़, अवमानना जारी रखी जाये।

24. चाणक्य नीति को अमल में लाना जारी रखा जाये।

संदर्भ :

1. आर. एस. एस. और फासिज्म; श्याम चन्द; पृ.-142 यूनिटी पब्लिशर्स, पंचकूला (हरियाणा); 2002

2. जातीयता, जातिवाद और साम्प्रदायिकता; वासुदेव शर्मा (सं.) पृ.-97; लोकजतन प्रकाशन, भोपाल; 2004

गाय-प्रेम और साम्प्रदायिकता

पिछले कुछ समय में हरियाणा में स्तब्ध कर देने वाली घटनाएं घट रही हैं, जिनका सम्बन्ध गाय से है। दशहरे के दिन झज्जर के पास दुलीना पुलिस चौकी पर मरे हुए पशुओं की खाल उतारकर गुजारा करने वाले पांच दलितों को पीट-पीट कर मार डाला गया। अफवाहें फैलाई गई कि वे गोकशी कर रहे थे। जबकि ऐसा कुछ नहीं था। उसके बाद ईसराना (जिला पानीपत) में मरे हुए बछड़े की खाल उतारते हुए दलितों को पीट-पीट कर भगा दिया गया। करनाल में भी ऐसी घटनाएं घटी और जींद में एक ट्रक जला दिया गया। 'गोरक्षा' का राष्ट्रीय सम्मेलन असंध में होने जा रहा है। पंजाब के किसी स्वामी ने मांग की है के गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित किया जाये। ये सब घटनाएं सोचने पर मजबूर करती हैं कि गाय-प्रेम के विस्फोट के पीछे क्या कारण है। हरियाणा जैसे क्षेत्र में गाय इतना संवेदनशील मुद्दा है कि एक गाय की रक्षा के लिए बल्कि मरी हुई गाय के लिए, पांच-पांच इंसानों की हत्या की जा सकती है। इससे जीव-प्रेम पर भी विचार करना जरूरी है कि क्या यह धर्मशास्त्रों के अनुकूल है कि गाय के लिए, इंसान को भी मारा जा सकता है।

हरियाणा कृषि प्रधान राज्य है। कृषि और पशुपालन का व्यवसाय आपस में इतना गुंथा हुआ था कि पशुओं के बिना कृषि और कृषि के बिना पशु निरर्थक लगते थे। गाय खेती के लिए महत्वपूर्ण पशु रहा है। दूध के लिए और विशेषकर बछड़ों के लिए। बैलों के द्वारा हल जोतने वाले समाज में, अच्छी पैदावार के लिए गाय जरूरी है। इस कारण गाय के साथ एक संवेदनात्मक और आर्थिक लगाव भी रहा है। गाय समृद्धि का पैमाना भी रही है। लेकिन आधुनिक समाज में खेती का स्वरूप बदल गया है। खेती का बहुत सारा काम अब मशीनों से होने लगा है, उसमें पशुओं पर निर्भरता कम हो गई हैं। दूध के व्यवसाय के लिए गाय की अपेक्षा भैंस अधिक लाभदायक है। इसलिए अब गाय की समाज में स्थिति भी बदल गई है। पहले गाय अमीरों के घरों की शोभा थी और अब गरीबों की मजबूरी है। किसी अमीर के पास यदि गायें हैं तो विलायती/अमेरिकन गायें हैं, उनके बछड़े बैल नहीं बनते। ये गायें रखना अब समृद्धि का सूचक है और इससे

किसी की धार्मिक भावनाएं नहीं जुड़ी बल्कि आर्थिक हित जुड़े हैं। साठ के दशक में आखिरी सालों में शुरू हुई श्वेत क्रांति गाय की जगह भैंस पर निर्भर थी। आज हरियाणा में भैंसों की संख्या और आर्थिक महत्व ने गाय के महत्व को पीछे कर दिया है। 1997 में मादा भैंसों की संख्या 14991 और 1998 में 13072 थी। दूसरी ओर 1997 में मादा गायों की संख्या 3631 थी और 3057 थी। (हरियाणा का स्टैटिक्ल एबस्ट्रेक्ट)। गाय की कद्र इतनी घट गई है कि पहले पुरोहित/ब्राह्मण का हर अवसर पर अपने यजमान से 'गो-दान' लेना नहीं भूलता था, चाहे मृत्यु का ही अवसर क्यों न हो। लेकिन अब कोई ब्राह्मण/पुरोहित भी गाय दान में नहीं लेता, उसके बदले में पांच रुपये नकद लेना अधिक श्रेयस्कर समझता है। दान में यानी मुफ्त में गाय लेना भी अब घाटे का सौदा है और 'संत-शिरोमणि' आचार्य गिरिराज किशोर फतवा दे रहे हैं कि 'गाय का जीवन मनुष्य से कीमती है और उसकी हर हालत में रक्षा की जानी चाहिए।' धर्म की व्यवस्था देने वाले और शास्त्रों के ज्ञाता पुरोहित गो-दान की महिमा का बखान करते नहीं थकते। 'गो-रक्षा' का संदेश किसके लिए है। ग्रामीण लोग, कृषि करने वाले लोग तो सीधे होते हैं, जो उनके काम का होता है, उसे रखते हैं, उसी से प्रेम करते हैं, जो उनकी खेती में काम का नहीं होता उसको छोड़ देते हैं। वे कोई ढ़ोंग नहीं करते। उनका पशु-प्रेम कोई सिद्धांत या धार्मिक आडम्बर नहीं है, बल्कि ठोस व्यावहारिक है। गाय अब किसी काम की नहीं है इसलिए वे उसको सिर्फ चराने के लिए नहीं रख सकते। खेती में उपयोगिता की कसौटी ही अंतिम कसौटी है। किसान हमेशा भैंस से कटड़ी या मादा भैंस और गाय से बछड़ा यानी भविष्य का बैल पैदा होने की कामना करता था। क्योंकि ये दोनों उसकी आर्थिक रीढ़ थे। बड़ी होकर भैंस दूध देगी और बैल हल जोतेंगे, जिससे कि किसान समृद्ध होगा। कटड़ी वाली भैंस और बछड़े वाली गाय की कीमत बाजार में हमेशा ज्यादा रही है। इसलिए यदि किसान के घर कोई बछड़ी यानी भविष्य की गाय और भैंस कटड़ा पैदा करे तो वह कई दिन तक उदास रहता है। किसान के जीवन में गाय का महत्व सिर्फ बछड़े यानी बैल पैदा करने की वजह से था। इसलिए उसका सम्मान व आदर था। अब किसान को चूंकि बैलों की जरूरत नहीं है, इसलिए गाय का आदर भी घट गया। महंगाई के जमाने में पशुपालन महंगा काम और घाटे का सौदा है। इसलिए किसान गाय को अपने घर से भगा देते हैं या फिर जैसे पहले कटड़ों को कसाइयों को बेच देते हैं, उसी तरह गाय को भी बेच देते हैं। यह सवाल सीधा अर्थशास्त्र से जुड़ा सवाल है।

असल में अब 'गो-प्रेम' गांव से नहीं, बल्कि शहरों से शुरू हुआ है। ऐसे लोगों का गो-प्रेम अचानक छलक पड़ा है जिन्होंने कभी गाय नहीं पाली। इन शहरी नव-गो-प्रेमियों में शायद ही किसी के घर गाय हो। यह सभी गो-भक्त भैंसों का पौष्टिक दूध पीना पसंद करते हैं। लेकिन लोगों की हत्या करने के लिए गाय को अपनी 'माता' बनाने से नहीं चूकते। इन चिकने-चुपड़े शहरियों का दिल नहीं पसीजता जब 'गो-माता' गलियों में कूड़े के ढेर से सब्जियों के गले-सड़े छिलके, कागज और पॉलीथीन खाकर, पेट भरने पर मजबूर होती है। 'गो-मूत्र' व 'गो-गोबर' की महिमा बखान करने वाले 'गो-प्रेमियों' के घर के सामने भी यदि 'गो-माता' गोबर या मूत्र कर दे, तो उसके प्रति दुत्कार का व्यवहार, खोखले गो-प्रेम को उजागर कर देता है। उसका पाखंड उसके चेहरे पर बैठ जाता है। 'गो-मूत्र' व 'गो-गोबर' की क्रांति करने वाले ये गो-सैनिक, अपने चमकदार फर्श पर गोमूत्र का पोंछा क्यों नहीं लगाते? अपनी मैली आत्मा या शरीर को साफ करने के लिए, गो-गोबर और गो-मूत्र मल-मलकर क्यों नहीं नहाते? यह उपदेश दूसरों के लिए है या उनको पिछड़े बनाए रखने के षडयंत्र का ही हिस्सा है। इनका गो-प्रेम नकारात्मक गो-प्रेम है जैसे कुछ अंध-राष्ट्र और भाषा प्रेमी, अपने राष्ट्र की सेवा करने या मजबूत करने के लिए कुछ नहीं करते और दूसरे राष्ट्रों के प्रति घृणा का जहर उगलते हैं, यही उनका देश प्रेम है। इसी तरह भाषा प्रेमी भी अपनी भाषा के विकास के लिए कुछ नहीं करते। हां, दूसरी भाषाओं को कोसने में उनका भाषा प्रेम उमड़ आता है। यह राष्ट्रप्रेम या भाषा प्रेम नहीं है, बल्कि दूसरों के प्रति नफरत है जो राष्ट्र व भाषा प्रेम की आड़ लेकर उजागर होती है। इन 'गो-भक्तों' का 'गो-प्रेम' नकारात्मक है। गाय की स्थिति सुधारने के लिए उसकी दशा पर गंभीर विचार करने में तो वह उजागर नहीं होता, लेकिन यह दलितों व मुसलमानों के प्रति जो मन की गहराई में बैठी हुई नफरत है, उसे उजागर करने का बहाना मात्र है। दूसरों की हत्या व अपमान करने में यह निकलता है।

असल में गाय के नाम पर राजनीति करने वालों के लिए ऐसे मौके ही उपयुक्त हैं, जहां वे अपने 'गो-प्रेम' को प्रदर्शित करके पूरा फायदा उठा सकते हैं। इनको एक विवाद चाहिए, एक मुद्दा चाहिए, जिसके माध्यम से अपनी घृणा व्यक्त की जा सके और समाज में तनाव पैदा किया जा सके। इनकी राजनीति के लिए जिंदा गाय के बजाए मरी हुई गाय अधिक उपयोगी है। मरी हुई गायों व अन्य पशुओं की खाल उतारकर, कुछ गरीब परिवारों के पेट तो पलते हैं। इन अमीर गो-भक्तों की राजनीति की दुकान भी मरी

हुई गायों के सहारे चलती है। समाज में तनाव, उन्माद, घृणा व भेद बढ़ता है, जो इनकी राजनीति का आधार है।

सोचने की बात यह है कि भारतीय समाज में गाय का मुद्दा अचानक तेजी क्यों पकड़ने लगा? साम्प्रदायिक शक्तियों की राजनीति के लिए अब क्या देवताओं की छवियां लोगों को उत्तेजित नहीं कर पा रही हैं? बाबरी मस्जिद गिराने के बाद, अब राम का नाम लोगों की भावनाओं को नहीं भड़का सकता और मथुरा की बात उठाना उनको अभी उचित नहीं लगता क्योंकि इनका प्रभाव एक विशेष क्षेत्र में ही होगा। अन्य क्षेत्रों के लिए एक अन्य मुद्दे की जरूरत है। हरियाणा जैसे क्षेत्र में, गाय के नाम पर लोगों को अपने पीछे लगाया जा सकता है। हरियाणा में ग्रामीण जनता का राजनीति में पूरा हस्तक्षेप है। यहां गाय के नाम पर ग्रामीण अंचल के लोगों को उन्मादी भीड़ में आसानी से बदला जा सकता है। शायद इसके महत्व को देखते हुए ही, इस मुद्दे को भुनाने के लिए 'साधु-संतों' और 'गो-भक्तों' ने हरियाणा पर धावा बोल दिया है। यहां आकर गो-प्रेम के पुराख्यान सुनाकर लोगों में 'गो-प्रेम' के नाम पर दूसरे धर्मों के प्रति नफरत फैलाने का काम भी जारी है, ताकि मौका मिलते ही इसे बड़े कांड़ों का रूप दिया जा सके।

'गो-प्रेम' को प्रचारित करने की इस मुहिम में सरकारी हाथ भी है। यह स्वत: स्फूर्त नहीं है, बल्कि इसके पीछे सरकारी प्रेरणा एवं धन काम कर रहा है। जून 1998 में केन्द्र सरकार (वाजपेयी) ने 'सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय' के अन्तर्गत 'भारतीय जीव-जन्तु कल्याण बोर्ड' का गठन किया, जिसका करोड़ों रुपयों का बजट है। इसका अध्यक्ष जस्टिस श्री गुमानमल लोढ़ा को बनाया गया। गुमानमल लोढ़ा 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' द्वारा संचालित 'गोरक्षा आन्दोलन समिति,' 'अखिल भारतीय गोरक्षा संघ' व 'गो हत्या एवं मांस निर्यात निरोध परिषद' के मुख्य कार्यकर्ता रहे हैं। गौर करने की बात है कि इन्हीं के माध्यम से 1966-67 में आर.एस.एस. ने गो-रक्षा के नाम पर पूरे देश में बावेला मचाया था और अपनी राजनीतिक शक्ति में काफी इजाफा किया था।

सन 2001 में कांची के शंकराचार्य ने 'गो-हत्या' के नाम पर आमरण अनशन की धमकी दी। सरकार ने श्री गुमानमल लोढ़ा की देखरेख में 'राष्ट्रीय मवेशी आयोग' बना दिया। जुलाई 2002 में इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसने अपनी रिपोर्ट में गाय से सम्बन्धित मामले को समवर्ती सूची में लाकर केन्द्रीय कानून बनाने, गो-रक्षा के लिए अलग मंत्रालय स्थापित करने, अनुदान बढ़ाने की सिफारिश की। इस आयोग ने आतंकवाद निरोधक कानून 'पोटा' में सुधार करके गोहत्या को इसके

अन्तर्गत लाने और किसानों को ट्रैक्टर पर मिलने वाली सब्सिडी समाप्त करने जैसी हास्यास्पद सिफारिशें भी कीं। इन सिफारिशों में नीयत स्पष्ट है कि गाय को संवेदनशील मुद्दा बनाकर प्रस्तुत किया जाए। जहां के किसानों व ग्रामीणों में मन्दिर व देवताओं की प्रतिमाएं साम्प्रदायिक उन्माद पैदा नहीं करती वहां इसके माध्यम से अल्पसंख्यकों व दलित विरोधी दुष्प्रचार करके उनका साम्प्रदायिकरण किया जा सकता है। ग्रामीण किसानों के मन में अन्य पशुओं के मुकाबले गाय का सम्मान अधिक है, वे इसे अपनी पहली रोटी देकर इसे प्रदर्शित करते हैं। उनकी इस भावना को सांस्कृतिक पहचान के साथ जोड़कर उनका साम्प्रदायिकरण किया जा सकता है। विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां आजादी के आन्दोलन के दौरान आर्य समाज के आन्दोलन चले जिनमें लिपि, गोरक्षा व धर्मान्तरण के नाम पर साम्प्रदायिक चेतना पनपी।

पिछले दिनों गोशालाओं की संख्या, गोरक्षा संगठन और इनके लिए अनुदान की राशि बढ़ी है। राष्ट्रीय जीव-जन्तु कल्याण बोर्ड के अध्यक्ष न्यायमूर्ति गुमानमल लोढ़ा ने 14 अक्तूबर 2000 के पत्र में लिखा कि 'जीव-जन्तु कल्याण बोर्ड 1962 से काम कर रहा है, 1962 से 1998 तक 36 वर्षों में यह संख्या (अनुदान पाने वाली संस्थाएं) 350 तक पहुंची व अब दो से ढ़ाई वर्ष में चार गुनी होकर 1200 तक पहुंच गई है। 'गोरक्षा के नाम पर इंसानों की हत्या तक करने को उकसाने के लिए प्रचार सामग्री तैयार की गई है। एक खास वर्ग के प्रति नफरत फैलाने का काम किया जा रहा है। इसी पत्र में माननीय लोढ़ा जी ने लिखा कि 'एक कैसेट एक घंटे की गोधन क्रांति पर बोर्ड ने बनाई है। भारत में गोमाता पर क्या अत्याचार होते हैं, इसका दिग्दर्शन कराया गया है। हरियाणा, राजस्थान के मेव इलाकों व अन्य प्रदेश में भी गोमांस, गोहत्या के पश्चात चोरी-छुपे बेचा जाता है, हरियाणा के मेव इलाकों में यह प्रमुख कार्य है, मेरा अनुरोध है कि इन सब का लाभ लेकर, गोरक्षा आन्दोलन को सुदृढ़ बनायें।' पत्र के इन अंशों से अनुमान लगाया जा सकता है कि राष्ट्रीय जीव-जन्तु कल्याण बोर्ड के माध्यम से, गोरक्षा के नाम पर सरकारी धन का दुरुपयोग हो रहा है। गोरक्षा के नाम पर ये घटनाएं अचानक नहीं घटीं, बल्कि इनकी पूरी पृष्ठभूमि है। एक पूरा माहौल तैयार किया गया है, जिससे लोगों को एक दूसरे के खिलाफ खड़ा किया जा सके। यह गोरक्षा की मुहिम नहीं है बल्कि उसके नाम पर समाज में साम्प्रदायिक जहर घोलना है। कई गोशालाओं के मुख्य द्वार पर ऐसे होर्डिंग लगाए गए हैं जिसमें 'लुंगी पहने दाढ़ी वाला' व्यक्ति गौकशी करता दिखाया गया है। मुसलमानों की छवि

को 'कसाई' के रूप बनाया जा रहा है।

राष्ट्रीय जीव-जन्तु कल्याण बोर्ड ने गोरक्षा के लिए काम आने वाले लोगों के लिए पुरस्कार एवं सम्मान घोषित किया है। 'गोभक्ति में बलिदान की परम्परा को सम्मान देने के लिए मैंने बोर्ड के द्वारा अभी 30 अक्तूबर 1999 को अहमदाबाद में गोभक्त झूमरलाल अशोपा, जोधपुर व श्रीमती गीता बहन अहमदाबाद तथा श्री हरभाई सोलंकी, अहमदाबाद को प्राणी रक्षा पुरस्कार से अलंकृत किया है। साथ ही मैंने घोषणा की है कि बलिदानी गोभक्तों के परिवारों को, हमेशा प्राणी मित्र पुरस्कार में एक सोने का मैडल व एक लाख रुपये भेंट किए जाएंगे।' इसी तरह प्राणी रक्षा के नाम 'गोरक्षा' के आन्दोलन व 'गोरक्षा' के नाम पर 'बलिदान' को प्रोत्साहित करके समाज में हिंसा व उन्माद का वातावरण सरकारी धन से तैयार किया जा रहा है। केवल राष्ट्रीय जीव-जन्तु, कल्याण बोर्ड ही नहीं स्वयं प्रधानमंत्री ने भी इसके लिए एक विशेष योजना घोषित की है।

अंग्रेजों ने अपने राज को स्थायी करने के लिए गाय व सुअर का इस्तेमाल किया। उन्होंने मन्दिर के आगे गाय का मांस व मस्जिद के आगे सुअर का मांस फेंककर, साम्प्रदायिक दंगे आयोजित करवाए। लोग इन धार्मिक सवालों पर झगड़ते रहे और उनका राज चलता रहा। यही साजिश अब भी है। लोगों को आपस में लड़वाओं और बिना कुछ विकास किए सत्ता चलाओं। इसी नीति का हिस्सा है गाय के नाम पर उन्माद, इसलिए ही सरकारी सहायता दी जा रही है। इसलिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय की देखरेख में एन सी ई आर टी ने जो पाठ्यक्रम लागू किया उसमें इतिहास को और संस्कृति को साम्प्रदायिक रंग में रंगकर प्रस्तुत किया है। गाय को भी अपनी इस योजना में शामिल किया है। छोटे-छोटे बच्चों के कोमल दिमागों में अपनी साम्प्रदायिक विचारधारा घुसाने के लिए छठी कक्षा के लिए प्रकाशित पुस्तक 'इंडिया एंड द वर्ल्ड' में लिखा है कि 'वैदिक अवस्था में गाय को घायल करने या मारने वाले की सजा या तो राज्य निकाल या फिर सजा-ए-मौत जैसी स्थिति है। (पृष्ठ-89) यह सब साम्प्रदायिकता की राजनीति के तहत हो रहा है। साम्प्रदायिकता की राजनीति आम लोगों का ध्यान उसके जीवन से जुड़े वास्तविक मुद्दों— शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार आदि को छोड़कर झूठे मुद्दों मन्दिर निर्माण, धार्मिक कर्मकांड, पाखंड आदि पर अपनी उर्जा लगाने के लिए प्रेरित करती हैं। साम्प्रदायिक राजनीति हमेशा रूढ़ियों को उठाती है। यह परंपरा व संस्कृति से ऐसी घटनाओं व चरित्रों को उठाती है जो लोगों में अवैज्ञानिकता, अंधविश्वास व भ्रम पैदा करते हो। परंपरा में ऐसी घटनाएं व चरित्र भी होते

हैं, जो आम लोगों के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देते हैं। लेकिन साम्प्रदायिक लोगों को परंपरा में और संस्कृति में कोई रूचि नहीं होती। प्रख्यात कथाकार मुंशी प्रेमचंद ने ठीक ही कहा था कि 'साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति का लबादा ओढ़कर आती है, नये रूप में आते हुए उसे लज्जा आती है। साम्प्रदायिक शक्तियां सांस्कृतिक प्रतीकों को ही अपनी राजनीति का आधार मानती है। गाय भी इसी योजना के तहत उनके लिए लाभकारी हो जाती है। इस राजनीति को समझने की आवश्यकता है।

मरे हुए जानवरों की खाल उतारने का भी अर्थशास्त्र है, जिस पर बड़े लोगों की नजर है। जानवरों की खाल उतराने और उनकी हड्डियों को बेचकर गुजारा करने वाले लोग अति गरीब हैं और कच्चे चमड़े का यह करोबार काफी बड़ा है। इस क्षेत्र को बड़े व्यवसायी अपने हाथ में लेने के लिए लालायित हैं। अमीर लोगों को महीन कपड़े, कॉफ लैदर के कपड़े, टोपी, बैल्ट, जूते तो चाहिए लेकिन उनकी प्रक्रिया से वे मुंह छिपाना चाहते हैं। पहले चमड़े का समस्त कारोबार गरीब कारीगरों के हाथ में था। लेकिन अब वह बड़े धन्ना सेठों के हाथ में है, जो दलित जातियों से सम्बन्धित नहीं है और इस व्यापार से अरबों रुपयों का मुनाफा कमा रहे हैं। इनके प्रति समाज में घृणा दिखाई नहीं देती, इनको समाज में आदर की नजर से देखा जाता है। टाटा-बाटा, लिबर्टी आदि पूंजीपतियों के हाथ में है, जो इस कच्चे चमड़े पर निर्भर हैं। बड़ी पूंजी इस क्षेत्र को भी अपने कब्जे में लेना चाहती हैं। पूंजी निवेश करके, ठेके लेकर इसका नियंत्रण बड़ी पूंजी के अधीन होगा और काम यही गरीब लोग करेंगे। इन धन्नासेठों के हाथ में करोबार आएगा, तो इस काम को भी घृणित काम नहीं माना जाएगा। समाज के नफरत के शिकार हमेशा गरीब आदमी होते हैं।

यह देखना दिलचस्प है कि साम्प्रदायिक शक्तियां साम्राज्यवादी अमेरिकी नीतियों की पिछलग्गू है वहां गो-मांस सबसे ज्यादा खाया जाता है इस कारोबार में कितने अमीर व साम्प्रदायिक लोग संलग्न है इसको देखना भी रुचिकर होगा। बंगलादेश में सबसे अधिक गो-मांस भेजा जाता है जिसमें कि गरीब-दलित मुसलमान शामिल नहीं हैं बल्कि अत्यधिक धनी लोग शामिल हैं। घी में गाय की चर्बी मिलाकर बेचने का प्रसंग अभी लोगों की स्मृतियों में है जो उन्हीं के द्वारा संचालित किया जा रहा था जो कि गाय-प्रेम के नाम पर गरीबों को मारते हैं और धर्म की ध्वजा उठाए घूमते हैं।

असल में मांस और चमड़ा उतारने का कारोबार मुख्यत: मुसलमान व दलितों के हाथ में है जो हिन्दू सवर्ण जातियों की घृणा के शिकार रहे हैं।

यही घृणा उनमें उभर आती है। दलित और मुसलमान कमजोर हैं, सामाजिक दृष्टि से भी और आर्थिक दृष्टि से भी, इसीलिए वे सबसे आसान निशाना होते हैं। खेतों में किसान करंट लगाकर गायों को मार देते हैं, गंडासियों से काट देते हैं, लेकिन उनके खिलाफ समाज के 'सम्मानित पंचायती' कभी आवाज नहीं उठाते। लेकिन इन कमजोर वर्गों के खिलाफ, सारी नफरत उगलकर हत्या तक कर डालते हैं। हरियाणा जैसे क्षेत्र में ऐसी घटनाओं की घटना, समाज के लिए चुनौती है। यह कानून व्यवस्था व सामाजिकता का मसला है। सभ्य समाज के सभी नगारिकों को, इसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

साम्प्रदायिकता और इतिहास

साम्प्रदायिकता की शुरूआत आधुनिक काल में हुई है, लेकिन साम्प्रदायिक शक्तियां इसका फैलाव इतिहास के मध्यकाल तक ले जाती हैं और इतिहास की घटनाओं को तोड़ मरोड़कर पेश करती हैं। वे इतिहास से कुछ घटनाओं को चुनकर उनकी व्याख्या साम्प्रदायिक आधार पर करती हैं। यह साबित करने की कोशिश करती हैं कि विभिन्न धर्मों के मानने वालों के बीच हमेशा विवाद व हिंसा होती रही है, ऐसा करके वे यह साबित करना चाहती हें कि साम्प्रदायिकता स्वाभाविक है व इसका सहारा लेकर वे अपने द्वारा वर्तमान में किए जा रहे अमानवीय कार्यों को उचित ठहराती हैं और साम्प्रदायिक चेतना के निर्माण करने में इतिहास का पूरा दुरुपयोग करती हैं। इसके लिए इतिहास से कुछ चरित्रों को व कुछ घटनाओं को चुनती हैं। अंग्रेजों ने लोगों में 'फूट डालो और राज करो' की नीति के तहत जानबूझकर ऐसा किया। उन्होंनें इतिहास का काल विभाजन धर्म के आधार पर किया। प्राचीन काल को 'हिन्दू-काल' और मध्यकाल को 'मुस्लिम-काल' की संज्ञा दी तथा प्राचीन काल को 'स्वर्ण-काल' एवं मध्यकाल को 'अंधकार-काल' के रूप में चित्रित किया। उन्होंनें ऐसे प्रदर्शित किया कि उन्होंने हिन्दुओं को मुसलमानों की हजारों साल की गुलामी से मुक्ति दिलाई है। तथ्यों को इस तरह तोड़ मरोड़ कर पेश किया जिससे ऐसा लगता है कि हिन्दू और मुसलमान सदा से आपस में साम्प्रदायिक आधार पर लड़ते रहते थे। शासकों की लड़ाई को हिन्दू व मुसलमान की लड़ाई के रूप में प्रस्तुत किया। जबकि शासक चाहे हिन्दू हो या मुसलमान वे अपने साम्राज्य के लिए ही लड़ते थे। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है कि हिन्दू राजा मुसलमान राजा से लड़े; हिन्दू राजा दूसरे हिन्दू राजा से लड़े तो दूसरी ओर मुसलमान राजा भी मुसलमान राजा से लड़े। और हिन्दू राजाओं व मुसलमान राजाओं की प्रगाढ़ मित्रता के उदाहरण भी हैं।

जब भारत में बाबर आया तो वह किसके विरुद्ध लड़ा था- इब्राहिम लोदी के। बाबर और इब्राहिम लोदी दोनों का धर्म इस्लाम था, इसके विपरीत राणा सांगा ने, जिसका धर्म हिन्दू था, बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आंमत्रित किया था। हुमायूं और शेरशाह सूरी के बीच के

बीच घमासान युद्ध हुआ, जबकि इन दोनों का धर्म इस्लाम था। अकबर और महाराणा प्रताप की लड़ाई को हिन्दू मुसलमान की लड़ाई के रूप में पेश किया जाता है, जो तथ्यपरक नहीं है, क्योंकि यह दो राजाओं की लड़ाई थी जो अपने अपने राज्य का विस्तार करना चाहते थे। यदि यह हिन्दू व मुसलमान के बीच युद्ध होता तो अकबर की ओर से हल्दी घाटी के युद्ध में राजा मान सिंह न लड़ता और महाराणा प्रताप की ओर से हकीम सूर खान न लड़ता। इसी तरह औरगंजेब और शिवाजी के सत्ता-संघर्ष को तथा औरगंजेब और गुरु गोविन्द के बीच सत्ता संघर्ष को हिन्दू मुसलमान व मुसलमान सिक्ख की लड़ाई के तौर पर पेश किया गया जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच दरार पैदा करने के लिए नायक व खलनायक चरित्र बनाए। जो एक के लिए नायक के रूप में पेश किया गया वह दूसरे के लिए खलनायक के रूप में। महाराणा प्रताप, शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह को हिन्दुओं के नायक व हिन्दू धर्म के रक्षक के रूप में तो औरगंजेब को खलनायक के रूप में तथा मुसलमानों के नायक व इस्लाम के स्थापक के रूप में पेश किया।

मुहम्मद गजनवी द्वारा सोमनाथ के मंदिर तोड़ने की घटना को हिन्दू धर्म का अपमान करने और इस्लाम की स्थापना करने की घटना की तरह प्रस्तुत किया, जबकि तथ्य ऐसे नहीं हैं। मुहम्मद गजनी अफगानिस्तान के गजना नामक शहर का रहने वाला था। गजना से सोमनाथ तक पहुंचने के लिए हजारों मील का सफर तय किया और उसके रास्ते में हजारों नहीं तो सैंकड़ों मन्दिर तो जरूर आये होंगें, लेकिन उसने उनको नहीं गिराया। यदि वह हिन्दू धर्म से नफरत के कारण मंदिर गिराता तो ये मंदिर भी उसको गिराने चाहिए थे, लेकिन उसकी इस काम में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह तो धन लूटना चाहता था और वह सोमनाथ के मंदिर में था इसलिए उसने सोमनाथ का मंदिर गिराया और उसकी मूर्तियों बंद हीरे-जवाहरात को लूटने के लिए उनको तोड़ा। यह भी काफी महत्त्वपूर्ण है कि मुहम्मद गजनी की फौज में काफी बड़ी संख्या में हिन्दू थे और उसके 12 सेनापतियों में से 5 हिन्दू थे— तिलक, सोंधी, हरजान, राण, हिंद। यह भी गौर करने लायक है कि यदि वह इस्लाम की स्थापना करना चाहता तो वापस जाते वक्त हिन्दू को अपने प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त न करता। यदि वह इस्लाम की स्थापना करना चाहता तो मुल्तान में मस्जिद क्यों तोड़ता। साम्प्रदायिक तत्वों द्वारा यह प्रचार किया जाता है कि औरंगजेब ने धार्मिक कट्टरता के कारण मंदिर गिरवाए, जिसमें आंशिक सच्चाई है। औरंगजेब ने मंदिरों को गिराया जरूर, लेकिन उसके कारण धार्मिक नफरत नहीं है,

बल्कि उसके कारण राजनीतिक हैं क्योंकि औरगजेब ने सिर्फ मंदिरों को ही नहीं गिराया उसने मस्जिदों को भी गिराया। ध्यान देने की बात यह भी है कि औरगजेब ने राजनीतिक कारणों से मंदिरों को केवल गिराया ही नहीं बल्कि मंदिरों को दान में जागीरें और जमीनें भी दीं। अहमदाबाद के जैन मंदिर के न्यासियों के पास आज भी औरगंजेब का रूक्का है, जो उस समय एक जैन मुनि को दिया गया था। इस मंदिर के निर्माण का श्रेय औरगंजेब को ही है।

औरगंजेब ने इलाहाबाद नगरपालिका में सोमेश्वर नाथ महादेव मंदिर के लिए जागीर और नकद उपहार दिए और साथ में यह हिदायत दी कि 'यह जागीर देवता की पूजा और भोग के लिए दी जा रही है।'

औरगंजेब ने उज्जैन में महाकेश्वर मंदिरों, चित्रकूट में बालाजी मंदिर, गुवाहटी में उमानन्द मंदिर, शत्रुंजय में जैन मंदिर और उतरी भारत में फैले गुरुद्वारों को अनुदान दिए।

गौर करने की बात यह है कि औरगंजेब का शासन सबसे बडा शासन था और उसके शासन में बहुत अधिक मंदिर थे, यदि वह धार्मिक नफरत के कारण मंदिरों को गिराता तो शायद हमें एक भी पुराना मंदिर नजर न आता। एक बात और जो ध्यान देने योग्य है वह यह कि औरंगजेब ने जो मंदिर तोड़े या गिराये उनमें से अधिकतर उसके राज्य की सीमा से बाहर थे। अपने राज्य की सीमा में तोड़े जाने वाले मंदिरों की संख्या बहुत कम है। यदि औरगंजेब धार्मिक नफरत के कारण मंदिर तोड़ता तो उसके लिए सबसे आसान तो बात तो यही थी कि वह अपने राज्य बिना किसी रोक टोक के मंदिर तोड़ सकता था, लेकिन उसने जितने मंदिर तोड़े उनमें अधिकतर उसकी सीमा से बाहर थे। इससे साफ पता चलता है कि मंदिर तोड़ने का कारण धार्मिक तो कतई नहीं था, और चाहे जो रहा हो, और यह राजनीतिक था।

मध्यकाल में सभी राजा मंदिरों या पूजा स्थलों को तोड़ते थे, चाहे वे किसी भी धर्म से ताल्लुक रखते हों। मध्यकाल में जब कोई राजा सत्ता संभालता था तो वह किसी न किसी देवता से आज्ञा लेकर, उस विशेष देवता की साक्षी में तिलक करवाके गद्दी पर बैठता था। इस तरह वह सत्ता के साथ जुड़ जाता था और सत्ता का चिन्ह बन जाता था। जब कोई राजा दूसरे राजा पर हमला करता था तो वह उसकी सत्ता के सारे चिन्हों को मिटा देना चाहता था क्योंकि विशेष पूजा स्थल सत्ता के साथ जुड़ा होता था इसलिए उस पर भी हमला होता था। अधिकतर पूजा स्थलों के टूटने की यही वजह है। इसीलिए इतिहास में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं, जिसमें हिन्दू

राजाओं ने दूसरे राजा की सीमा में आने वाले मंदिरों को तोड़ा। परमार राजाओं का हिन्दू धर्म से सम्बंध था, लेकिन उन्होंनें जैन मंदिरों को तोड़ा। काश्मीर के राजा हर्षदेव ने मूर्तियों को मंदिरों से हटाया, उसने तो मूर्तियां हटाने के लिए 'देवोतपत्नायक' नामक अधिकारी नियुक्त किए थे। मराठों ने टीपू सुल्तान के राज्य में पड़ने वाले श्रीरंगपट्टनम के मंदिर को लूटा और नष्ट किया, और टीपू सुल्तान ने उसकी मुरम्मत करवाई। अंग्रेज शासकों ने भारत की जनता की एकता को तोड़ने के लिए इतिहास को इस ढंग से प्रस्तुत किया था और उन्हीं की सहयोग करने वाली तथा लोगों के भाईचारे व एकता को तोड़ने वाली साम्प्रदायिक शक्तियों ने हिन्दू व मुसलमानों में फूट डालने के लिए इसका प्रयोग किया, जबकि यह मध्यकाल के शासकों की सामान्य विशेषता रही थी। शासक चाहे वह हिन्दू था या मुसलमान पूजा स्थलों को तोड़ता था। साम्प्रदायिक तत्व औरगंजेब के बारे में कहते हैं कि उसने धार्मिक घृणा के कारण मंदिरों को गिराया, जबकि ऐतिहासिक तथ्य कुछ और ही सच्चाई बताते हैं। वाराणसी का विश्वनाथ मंदिर औरगंजेब ने क्यों गिराया इसके बारे में डॉ पट्टाभिसीतारमैया ने दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर अपनी पुस्तक 'दि फेदर्स एंड दि स्टोन्स' में इसका विवरण निम्न प्रकार से दिया है:—

विश्वनाथ मंदिर के बारे में कहानी यह है कि एक बार जब औरगंजेब बंगाल जाने के लिए वाराणसी से गुजर रहा था तो उसके साथी हिन्दू राजाओं ने अनुरोध किया कि यदि वहां एक दिन विश्राम कर लिया जाए तो उनकी रानियां गंगा में स्नान करके भगवान विश्वनाथ के दर्शन कर सकती हैं। रानियों ने पालकियों में यात्रा की। उन्होंनें गंगा में स्नान किया और पूजा के लिए विश्वनाथ मंदिर गईं। पूजा के बाद सभी रानियां वापस लौट आईं, लेकिन कच्छ की रानी वापस नहीं आई। पूरे मंदिर में तलाश की गई लेकिन रानी कहीं नहीं मिली। जब औरगंजेब को इसका पता चला तो वह आग बबूला हो गया। उसने रानी की खोज करने के लिए बड़े अधिकारियों को भेजा। अन्ततः उन्हें पता चला कि दीवार में जड़ी गणेश की मूर्ति को इधर-उधर सरकाया जा सकता था। जब मूर्ति को हटाया गया तो उन्हें तहखाने जाने वाली सीढ़ियां मिलीं। वहां रानी को रोते हुए पाया गया; उसकी इज्जत लूटी जा चुकी थी। तहखाना ठीक भगवान की मूर्ति के नीचे था। राजाओं ने इस जघन्य अपराध के लिए कड़ी सजा की मांग की। औरगंजेब ने आदेश दिया कि पवित्र स्थान को अपवित्र कर दिया गया है। भगवान विश्वनाथ को किसी दूसरे स्थान पर ले जाया जाए और महंत को गिरफ्तार करके सजा दी जाए।[2]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विश्वनाथ मंदिर का गिराया जाना परिस्थितिवश है। औरंगजेब ने जो दूसरे मंदिर गिराए हैं उनका वह हिस्सा नहीं गिराया जिसमें पूजा होती थी। मंदिर के साथ जो कमरे आदि बने होते थे वो हिस्सा गिराया है। इससे भी साफनजर आता है कि ये किसी धर्म का अपमान करने के लिए या किसी खास धर्म को मानने वाले लोगों की आस्था को ठेस पहुंचाने के मकसद से नहीं गिराए गए , क्योंकि यदि इस मकसद से गिराए जाते तो वह हिस्सा जरूर गिराया जाता जिस हिस्से में पूजा होती थी। एक और तथ्य देखने लायक है कि औरंगजेब ने मंदिर गिराकर उसकी जगह मस्जिद बनवाई, ऐसा उसने स्थान की पवित्रता बनाए रखने के लिए किया। यदि वह किसी धर्म का अपमान करना चाहता या किसी धर्म को माने वाले लोगों की भावनाओं को ठेस पहुंचाना उसका मकसद होता तो वह उसकी जगह घुड़साल या शौचालय आदि कुछ भी बना सकता था। लेकिन उसने ऐसा न करके स्थान की पवित्रता को बनाए रखने के लिए ईश्वर की पूजा का ही स्थान बनाया। इसका सीधा यही अर्थ है कि इनको तोड़ने के पीछे धार्मिक कारण नहीं है, बल्कि राजनीतिक कारण हैं। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मध्यकाल में मंदिरों के पास बहुत शक्ति होती थी वे राजनीति के अड्डे बन गए थे। जब किसी शासक को इस बात का अंदेशा होता कि वे उसके लिए खतरा बन सकते हैं तो वह उनको नष्ट कर देता था।

औरगंजेब निर्णय लेते समय मंदिर मस्जिद में कोई भेद नहीं करता था। उसने गोलकुण्डा रियासत में एक मस्जिद भी गिरवाई। गोलकुण्डा के विख्यात तानाशाह ने राज्य की जनता से कर वसूल लिया, लेकिन उसने दिल्ली केा हिस्सा नहीं दिया। उसने खजाने को धरती में गड़ा दिया और उस पर मस्जिद बना दी। जब औरगंजेब को इस बात का पता चला तो उसने मस्जिद को गिराने का हुक्म दिया।

औरगंजेब सिर्फ एक राजा था, उसके मन में हिन्दू व मुसलमान का कोई भेदभाव नहीं था, जब भी कोई निर्णय लेना होता था तो उसकी नजर में सिर्फ अपने शासन का हित ध्यान में होता था। शिवाजी ने जब मुगलों के शासन में आने वाले व्यापारिक केन्द्र सूरत पर हमला किया और शिवाजी के सैनिकों ने वहां चार दिन तक खूब जमकर हिन्दू व्यापारियों को लूटा। सूरत के एक प्रसिद्ध व्यापारी वीर जी वोरा थे, जिसके अपने जहाज थे। उस समय उस की सम्पति अस्सी लाख रूपए थी। शिवाजी की सेना ने वीर जी वोरा को भी जमकर लूटा। औरगंजेब ने सूरत के लिए सेना भेजी। उसने तीन साल तक व्यापारियों से चुंगी न वसूलने का भी फरमान जारी

किया। साम्प्रदायिक लोग औरगंजेब के बारे में कहते हैं कि उसने धार्मिक घृणा के कारण मंदिरों को गिराया, जब साम्प्रदायिक शक्तियां लोगों नफरत फैलाने के लिए इतिहास का दुरुपयोग करती हैं। एक शासक को किसी विशेष धर्म का प्रतिनिधि मानकर उसे कार्यों को धर्म प्रेरित कार्य मानते हैं, और उनको उस सम्प्रदाय के लोगों के खिलाफ घृणा फैलाने के लिए प्रयोग करते हैं, कई बार उसके बारे में झूठी कहानियां भी गढ लेते हैं जिनका सच्चाई से कोई वास्ता नहीं होता। औरगंजेब के बारे में भी ऐसा मिथ्या प्रचार किया गया कि वह लोगों केा जबरदस्ती मुसलमान बनाता था। जबकि ऐतिहासिक सबूत इसके उलट हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है। आरैंगजेब के पिता शाहजहां ने बनघेरा के राजा इंद्रमन को कैद कर लिया था। औरंगजेब ने इंद्रमन को आजाद करने की सिफारिश शाहजहां से की। शाहजहां ने उसकी सिफारिश नहीं मानी, लेकिन जब औरगंजेब इस पर जोर दिया तो शाहजहां ने यह शर्त लगा दी कि यदि वह मुसलमान बन जाए तो उसे छोड़ा जा सकता है। औरगंजेब ने शाहजहां की इस बात को उचित नहीं माना ओर उसका विरोध किया। औरगंजेब का यह विरोध पत्र 'अदब-ए-आलमगीर' में सुरक्षित है। एक और बात ध्यान देने योग्य है कि सन 1872 की जनगणना पहली प्रामाणिक जनगणना मानी जाती है। इस के अनुसार मुसलमानों की आबादी उतर-पश्चिमी सीमा पर अफगानिस्तान बलुचिस्तान आदि प्रदेशों और आजकल के बंगलादेश में अधिक थी, यह यहां की कुल आबादी का 80 प्रतिशत थी, जबकि आगरा और दिल्ली के पास जहां औरंगजेब की राजधानी थी, वहां मुसलमानों की आबादी लगभग 11 प्रतिशत थी। यदि तलवार के जोर पर मुसलमान बनाया गया होता तो अपनी राजधानी के पास तो इसका जोर अधिक चलता और यहां की सारी जनता मुसलमान बना ली जाती और यहां एक भी हिन्दू न बचता, जबकि आंकडे इससे हटकर हैं और इस बात की ओर संकेत करते हैं कि धर्म परिवर्तन का कारण तलवार का जोर नहीं बल्कि अन्य कोई कारण रहे हैं।

अंग्रेज इतिहासकारों ने औरगंजेब को एक कट्टर , धर्मांध मुसलमान के रूप में चित्रित किया। हिन्दू साम्प्रदायिक शक्तियों ने औरगंजेब के बारे फैलाया कि वह हर रोज लाखों हिन्दुओं के जनेऊ काटकर दोपहर का खाना खाता था, उसने इस्लाम को प्रचारित करने के लिए तलवार का सहारा लिया, वह हिन्दू धर्म से इतनी नफरत करता था कि उसने हिन्दू धर्म को नष्ट करने के लिए मंदिरों को तोड़ा और मूर्तियों को नष्ट किया। दूसरी और मुस्लिम साम्प्रदायिक शक्तियों ने औरगंजेब को इस तरह से प्रस्तुत किया जैसे कि वह इस्लाम को प्रसारित करने के लिए अवतार हुआ हो,

और उसने सारे काम शरीयत के अनुसार किए। दोनों सम्प्रदायों की साम्प्रदायिक शक्तियों ने औरगंजेब के व्यक्तित्व को सही ढंग से प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि अपने राजनीतिक हितों के लिए उसकेा तोड़ा मरोड़ा। दोनों धर्मों की साम्प्रदायिक शक्तियों ने अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए औरगंजेब का इस्तेमाल किया। हिन्दू धर्म के साम्प्रदायिक तत्वों ने हिन्दुओं में मुसलमानों के प्रति घृणा पैदा करने के लिए इसका प्रयोग किया, तो मुसलमान साम्प्रदायिक शक्तियों ने इसके चरित्र को मंहिमा मंडित किया, उसे इस्लाम के संरक्षक के तौर पर प्रस्तुत करके उसे आदर्श मुस्लिम शासक ठहराया।

औरगंजेब न तो आदर्श मुसलमान था और न ही हिन्दू विरोधी था, न उसे किसी विशेष धर्म से लगाव था और न ही किसी धर्म से नफरत थी, वह सिर्फ एक राजा था अपनी राज गद्दी को सुरक्षित रखने के लिए तथा उसे विस्तार देने के लिए उसने हर काम किया, उसके राज में जो भी बाधा बना उसने उसे उतनी ही मुस्तैदी से दूर किया जितनी की कोई भी राजा करता है। उसने सारे कदम अपने राज्य को ध्यान में रखते हुए उठाए।

सबसे पहले इस बात को देखना जरूरी है कि क्या औरगंजेब हिन्दू धर्म के लोगों और हिन्दू धर्म से नफरत करता था? क्या वह शासन नीति में हिन्दू व मुसलमान में भेद करता था? क्या उसने धार्मिक नफरत के कारण हिन्दुओं के मंदिरों को गिरवाया ?

औरंगजेब एक शासक था, और का कोई धर्म नहीं होता, उसका धर्म केवल और केवल अपनी गद्दी होता है। वह वही फैसले लेता है जो उसके शासन सत्ता के अनुकूल हों। औरगजेब शासन में निर्णय लेते समय किसी का धर्म नहीं देखता था कि वह किस धर्म से ताल्लुक रखता है, शासकीय निर्णय लेते समय वह हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नहीं करता था। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, जिन पर नजर डालनी जरूरी है

जब शाहजहां सम्राट था और औरगंजेब के पास कुछ सुबों का शासन होता था, तो उसके पास जो हिन्दू अधिकारी थे उसने उनके लिए उसने समय समय पर उन्नति तथा वेतन वृद्धि के लिए शाहजहां से सिफारिश की और उनको जागीरें भी दीं।[3]

1. औरगंजेब ने सूबा एजलपुर की दीवानी के लिए रायकरण राजपूत की सिफारिश बादशाह से की, किन्तु बादशाह ने इसे अस्वीकार कर दिया। औरगंजेब इससे काफी निराश हुआ, परन्तु उसने बादशाह की अनदेखी करते हुए उसकी उन्नति की।

2. नरसिहं दास, जो असीरगढ के किले का किलेदार था, उसकी

सेवाओं की प्रशंसा की और उसके वेतन में वृद्धि की सिफारिश बादशाह से की।

3. औरगंजेब जब स्वयं शासक हुआ तो उसने हिन्दुओं को उच्च पदों पर नियुक्त किया और समय-समय पर उनकी पदोन्नति की। कुछ नाम ये हैं— राजा भीमसिंह (महाराणा जयसिंह का भाई), इन्द्रसिंह (महाराणा जयसिंह का भाई), राजा मानसिंह, राजा रूपसिंह का पुत्र इत्यादि।

4. औरंगजेब के शासन काल में हिन्दू मनसबदारों (अफसर) की संख्या सबसे अधिक थी। अकबर के समय में हिन्दू मनसबदारों की संख्या केवल 32 थी, जहांगीर के समय में यह 56 हो गई। औरगंजेब के समय में यह बढकर 104 हो गई। इससे स्पष्ट है कि वह प्रशासनिक कार्यों में धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करता था। यह भी ध्यान देने लायक तथ्य है कि औंरगजेब के शासन में कुल मनसबदारों का 34 प्रतिशत हिन्दू थे, जो कि इससे पहले अधिक से अधिक 22 प्रतिशत थे और अकबर के समय में ये 12 प्रतिशत थे। इन आंकडों के बावजूद औंरगजेब को साम्प्रदायिक और हिन्दुओं से नफरत करने वाला मानना इतिहास के प्रति साम्प्रदायिक रवैया नहीं तो और क्या है?

5. औरगंजेब की सेना का सेनापति जयसिंह था, जो शिवाजी के विरुद्ध लड़ा था। औरगंजेब ने राजा जयसिह को मिर्जा की उपाधि दी थी। औरंगजेब की सेना में हिन्दू सैनिकों की संख्या मुसलमानों से कहीं अधिक थी। औरंगजेब और शिवाजी की लड़ाई कभी भी हिन्दू और मुसलमान की लड़ाई नहीं रही। यह मुगलों और मराठों की लड़ाई भी नहीं थी। बहुत से इज्जतदार मराठा सरदार हमेशा मुगलों की सेना में रहे। सिंद खेड के जाधव राव के अलावा कान्होजी शिर्के, नागोजी माने, आवाजी ढल, रामचंद्र और बहीर जी पंढेर आदि मराठा सरदार मुगलों के साथ रहे।

शिवाजी

शिवाजी के जीवन को आधार बनाकर साम्प्रदायिक शक्तियों ने यह साबित करने की कोशिश की कि मध्यकाल में हिन्दू मुस्लिम संघर्ष था और शिवाजी ने हिन्दू राज्य स्थापित करने के लिए संघर्ष किया। आरम्भ में शिवाजी और मुगलों के बीच कोई द्वन्द्व नहीं था बल्कि शिवाजी और औरगंजेब के बीच राजनीतिक समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार शिवाजी को बहुत अधिक धन और हैसियत के रूप में लाभ होना था। इसमें शिवाजी को 40 लाख 'हुनस' मिलने थे और इसके बदले में उसे मुगल शासको का वफादार रहना था और आज्ञाकारी होना था। मुगल

बादशाह के अन्तर्गत जो रियासतें आती थीं उनमें लूट रोकनी थी और जब उसे कहा जाए तो दक्किन में अपनी सेवाएं प्रस्तुत करनी थी। इस समझौते के अनुसार शिवाजी के पुत्र शम्भा जी को 5000 का 'मनसब' दिया गया और शिवाजी के विश्वासपात्र सेनापति नेताजी के साथ दक्कन की 'सुबहदार' में शामिल होने दिया। इस समझौते में शिवाजी के पुत्र को जो मनसब दिया गया वह कम नहीं था, बल्कि वह राजपूताना का सबसे पुराना और विस्तृत घराना मेवाड़ के राणा के मनसब के बराबर था। शिवाजी को व्यक्तिगत रूप से दरबार में हाजिर होने से भी छूट दी गई थी, यह केवल मेवाड़ के राणा के पास थी, जो कि मुगलों का सबसे पुराना वफादार था। परन्तु शिवाजी इस मनसब से सतुष्ट नहीं थे, क्योंकि ऐसे सम्मान और मनसब अन्य मराठा सरदारों को दिए जा चुके थे, जिन्हें शिवाजी अपने से प्रतिष्ठा और सत्ता में अपने से कमतर समझते थे।

यदि शिवाजी का मुसलमानों के साथ युद्ध होता तो शिवाजी की सेना में मुसलमान न होते, जबकि इसके विपरीत शिवाजी की सेना में बहुत अधिक पठान मुसलमान थे। उनका व्यक्तिगत सचिव मौलवी हैदर अली खान था, जो कि औरंगजेब और मुगल अधिकारियों के साथ शिवाजी के गोपनीय पत्रचार को देखता था। शिवाजी का मुख्य तोपची भी इब्राहिमगर्दी खान था। शिवाजी के सेनापति दौलतखान और सिद्दीक मिसरी थे, जो दोनों मुसलमान थे। शिवाजी को औरगंजेब ने आगरा की जेल में कैद कर लिया था, तो उनको वहां से निकालने वाला व्यक्ति मदारी मेहतर नाम का मुसलमान था।[4] यदि शिवाजी के मन में मुसलमानों के प्रति अविश्वास होता या उसके मन में साम्प्रदायिक भावना होती या यह हिन्दू और मुसलमानों के बीच युद्ध होता तो वे अपनी सेना में और इतने महत्वपूर्ण पदों पर मुसलमानों को क्यों रखते? शिवाजी की सेना में और महत्वपूर्ण पदों पर मुसलमानों की नियुक्ति इस बात का सबूत है कि औरगंजेब और शिवाजी के बीच का युद्ध हिन्दू और मुसलमान के बीच युद्ध नहीं था बल्कि दो राजाओं के बीच था, जो अपनी अपनी सीमाएं बढ़ाने के लिए लड़ रहे थे। यदि शिवाजी हिन्दू राज्य कायम करने के लिए लड़ रहे होते तो ये मुसलमान भी उसकी सेना में क्यों रहते? इससे साफ पता चलता है कि मध्यकाल में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कोई धार्मिक मतभेद नहीं था और हिन्दू और मुस्लिम राजा के बीच कलह था तो उसका कारण राजनीतिक था न कि धार्मिक। 'वे जब आगरे गए तो उनके साथ मदारी मेहतर नाम का मुसलमान युवक था। शिवाजी महाराज के अपने डेरे से निकल जाने के बाद अंत में वही उनके डेरे से बाहर निकला। अफजल खां से मिलने के

समय महाराज के साथ इने गिने दस आदमियों में सिद्दी इब्राहीम था। महाराज का पहला सरनोबत अर्थात सेनापति नूरखां बेग था। ई. सन 1673 में जब बहलोलखां पर प्रतापराव गूजर ने हमला किया, उस समय सिद्दी हिलाल नामक सरदार अपने पांचों बेटों सहित बहलोल से लड़ रहा था। जंजिरे के सिद्दी को मार भगानेवाला दौलतखां महाराज के जहाजी बेड़े का सरदार था।'[5] शिवाजी की सेना में बहुत से मुसलमान थे, जो शिवाजी के साथ मिलकर मुसलमान बादशाह के खिलाफ लड रहे थे। अत: यह लड़ाई किसी भी तरह से हिन्दू और मुस्लिम के बीच की लड़ाई नहीं थी। दूसरी ओर औरंगजेब की सेना का सेनापति मिर्जा राजा जयसिंह था, जो कि हिन्दू था और मराठे थे। शिवाजी की सेना में शीर्ष स्तरों पर मुसलमानों का होना और औरगंजेब की सेना में शीर्ष स्तर पर हिन्दुओं का होना इस बात का प्रमाण है कि यह धर्म युद्ध नहीं था, बल्कि सत्ता के लिए संघर्ष था। इसे साम्प्रदायिक ढंग से प्रस्तुत करना इतिहास के तथ्यों से छेड़छाड़ करना है।

शिवाजी का दृष्टिकोण कतई साम्प्रदायिक नहीं था। उनमें जरा सी भी साम्प्रदायिकता की भावना नहीं थी। वे दूसरे धर्म के लोगों का तथा दूसरे धर्म की शिक्षाओं का आदर करते थे, दूसरे धर्म के विश्वासों व पूजा पद्धतियों का सम्मान करते थे। इस बात का प्रमाण यह है कि शिवाजी ने अपने जगदीशपुर महल के सामने मस्जिद बनवाई थी, जिसमें वह हररोज पूजा के लिए जाता था।

शिवाजी के मन में दूसरे धर्म के प्रति कितना आदर था इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वे दूसरे धर्मों के संतों और फकीरों को कितना आदर देते थे। 'हजरत बाबा याकूत बहुत थोरवाले' को उन्होंनें जीवन पेंशन दे रखी थी। गुजरात के फादर एम्ब्रोस जिनका चर्च खतरे में था उनकी भी शिवाजी ने मदद की थी। शिवाजी को किसी धर्म के प्रति कोई नफरत नहीं थी। एक बार उन्होंनें लूट के माल में कुरान की प्रति देखी तो वे अपने सिपाहियों पर नाराज हो गए। आखिरकार कुरान की प्रति उसके घर पहुंचा दी गई जिसके घर से लेकर आए थे। उनके मन में स्त्रियों के प्रति बहुत सम्मान था। एक बार उसके सिपाही कल्याण के सुबेदार का घर लूटकर, लूट के माल के साथ उसकी बेटी भी ले आए। शिवाजी को इस पर बहुत पछतावा हुआ और उस युवती को उन्होनें इज्जत के साथ डोली में बिठाकर उसके घर भेज दिया। जैसे एक भाई बहन की विदाई में उपहार देता है उसी तरह शिवाजी ने युवती को उपहार में दो गांव दिए। शिवाजी ने अपने सिपाहियों को सख्त आदेश दे रखे थे कि लड़ाई या लूट के माल में मस्जिद, कुरान और नारी का अपमान नहीं होना चाहिए।

साम्प्रदायिक शक्तियां शिवाजी को साम्प्रदायिकता के रंग में रंगती हैं, दूसरे धर्म की स्त्रियों का अपमान करती हैं। साम्प्रदायिक शक्तियां अपने आदर्श के रूप में शिवाजी को रखकर उनका अपमान करती हैं।

आजादी के आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले पंजाब केसरी लाला लाजपतराय ने शिवाजी की जीवनी लिखी है। उसमें शिवाजी का औरगंजेब को लिखा गया एक पत्र शामिल किया है, उस पत्र को पढ़कर अनुमान लगाया जा सकता है कि औरंगजेब और शिवाजी के बीच कोई धर्म युद्ध नहीं था बल्कि राजनीतिक संबंध थे।

'सन 1679 में औरगंजेब को एक पत्र लिखा। उन्होंनें लिखा— शंहशाह आलमगीर ओरगंजेब की सेवा में

शिवाजी सदैव आपका हितैषी रहा है। भगवान की कृपा और आपकी मेहरबानी के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। यद्यपि मुझे प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण आपसे भेंट किए बिना ही आपके दरबार से अचानक आना पडा। इस पर भी मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं आज भी एक कृतज्ञ सेवक की भांति आपकी सेवा करने के लिए कटिबद्ध हूं।'....

'बादशाह सलामत! यदि आप ईश्वरीय पुस्तक कुरान में विश्वास रखते हैं, उसमें देखिए, वहां परमात्मा को रब्बे-उल-आलदीन (मनुष्य मात्र का मालिक) कहा है, केवल मुसलमानों का मालिक नहीं कहा है। यथार्थ में हिन्दू धर्म और इस्लाम एक दूसरे के समान रूप से पूरक हैं। परमात्मा ने मनुष्य जाति के भिन्न भिन्न रूप रंग की रेखाओं को संपूर्ण करने के लिए इस्लाम और हिन्दू धर्म प्रयोग किया है यदि पूजा-स्थान मस्जिद है तो उसमें परमात्मा की स्मृति में आयतें गाई जाती हैं। यदि पूजा-स्थान मंदिर है तो वहां परमात्मा के दर्शनों की उत्कण्ठा में घंटे घडियाल गुजांए जाते हैं। किसी मनुष्य के धार्मिक विश्वास और कर्मकाण्ड के लिए अंधश्रद्धा तथा असहिष्णुता का प्रदर्शन करना इस्लामी पुस्तक की आज्ञाओं को बदलना है। नई नई बातें तथा प्रथाएं जारी करना दिव्य चित्रकार की स्मृति में दोष दिखाने के समान है।' इस तरह देखा जा सकता है कि शिवाजी हिन्दू और इस्लाम धर्म को एक दूसरे का विरोधी नहीं मानते थे बल्कि एक दूसरे का पूरक मानते थे। उनका मानना था कि सभी धर्मों का सार एक है, उनके रिवाजों में अन्तर है। रीति रिवाज, कर्मकाण्डों के आधार पर धार्मिक भेदभाव करना उचित नहीं है। उनको कुरान का पूरा ज्ञान था और वे इसका बहुत अधिक आदर करते थे। शिवाजी का नजरिया किसी भी तरह से साम्प्रदायिक नहीं था, लेकिन संकीर्ण धार्मिक शक्तियां अपने राजनीतिक लाभ के लिए शिवाजी जैसे

उदार व्यक्ति के विचारों और जीवन को विकृत करके प्रस्तुत करती हैं।

शिवाजी ने समर्थ रामदास स्वामी को अपना गुरु धारण किया। स्वामी रामदास ने मराठी भाषा के प्रसिद्ध कवि व सूफी शेख मोहम्मद की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा कि 'शेख मोहम्मद तुम महान हो। तुमने संसार के रहस्य को ऐसे ढंग से और ऐसी भाषा में उद्घाटित किया है जो कि सामान्य व्यक्ति की समझ से परे है। तुमने समस्त संसार की मूलभूत एकता और पहचान को सच्चे अर्थों में ग्रहण किया है। तुमने हमारे ऊपर अहसान किया है, हम तुम्हारे ऋणी हैं और इस ऋण को अपने शरीर और आत्मा को तुम्हारे चरणों में अर्पित करके भी नहीं चुका सकते। मैं तुम्हारे पैरों की पवित्र धूल अपने सिर पर रखता हूं।' शिवाजी के विचारों और जीवन पर ऐसे महान संत का प्रभाव था, जिनके मन पर जरा भी धार्मिक कट्टरता नहीं थी। शिवाजी को हिन्दुओं का नेता कहना या उन्हें हिन्दू धर्म का रक्षक मानना उनके व्यक्तित्व को सीमित करके देखना है; उनके उदार हृदय, एवं उनके मानवीय मूल्यों का अपमान करना है।

शिवाजी के पूर्वजों में साम्प्रदायिक विद्वेष नहीं था। वे सभी धर्मों के महान संतों का सम्मान करते थे। इसका असर भी उनके जीवन पर था। प्रसिद्ध है कि शिवाजी के दादा की पत्नी मौलीजी ने महाराष्ट्र के खुलदाबाद के सूफी संत शाह शरीफजी से आशीर्वाद लिया और उनके आश्रम में रहीं। यह भी प्रसिद्ध है कि शिवाजी के दादा के कोई संतान नही थी, और शाह शरीफ जी के आशीर्वाद से उनको दो पुत्र हुए। कहा जाता है कि शाह शरीफ जी को सम्मान[5] देने के लिए ही शिवाजी के पिता का नाम शाहजी रखा गया था। ऐसे पालन पोषण में बढ़े तथा दूसरे धर्मों का आदर करने वाले महान पुरुष को साम्प्रदायिक कहना उसके उदार विचारों का अनादर करना है। अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए तथा वर्तमान में अपनी साम्प्रदायिक राजनीति का औचित्य ठहराने के लिए साम्प्रदायिक लोग शिवाजी को हिन्दू धर्म के रक्षक के रूप में पेश करते हैं। शिवाजी किसी खास धर्म के खिलाफ या पक्ष में नहीं थे, वे सभी धर्मों का आदर करते थे।

गुरु गोविन्द सिंह

गुरु गोविन्द सिंह सिक्खों के दसवें गुरु थे। गुरु गोविन्द सिंह ने ही खालसा पंथ की नींव रखी। वे बहुत बड़े योद्धा थे, उनकी लड़ाई हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी हिन्दू राजाओं के साथ-साथ मुगल शासक औरंगजेब के साथ भी रही। पर साम्प्रदायिक इतिहासकार गुरु गोविन्द सिंह की औरंगजेब से लड़ाई को हिन्दूधर्म और इस्लाम की लड़ाई के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

वास्तव में ऐसा नहीं है। यह ठीक है कि इन दोनों का धर्म अलग अलग था, लेकिन उनके बीच यह धार्मिक लड़ाई नहीं थी। गुरु गोविन्द सिंह सभी धर्मों का आदर करते थे। उनकी लड़ाई राजनीतिक थी न कि धार्मिक। वे धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध थे, अंधविश्वासों के विरुद्ध थे। उनके जीवन की घटनाओं से इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

गुरु गोविन्द सिंह के जीवनी लेखक गोपाल सिंह ने लिखा है—'बहुत से सिक्ख गुरु के उपदेशों को मानते थे। गुरु गोविन्द सिंह उनकी आध्यात्मिक शक्ति को और धार्मिक शक्ति को तो खूब पहचानते थे, लेकिन वे राजनीतिक दृष्टि से इतने प्रभावशाली नहीं थे। गुरु उन्हें एक ऐसी शक्ति में बदलना चाहते थे, इसमें वे तभी सफल हो सकते थे जबकि हर एक व्यक्ति आजाद हो। हर एक व्यक्ति समान हो। जात-पात का भेदभाव न हो। जात-पात के भेदभाव के उनको कड़ुवे अनुभव थे। एक बार गुरु ने दो शिष्यों को संस्कृत पढ़ने के लिए बनारस भेजा तो पंडितों ने उनको पढ़ाने से इन्कार कर दिया, क्योंकि वे नीच जाति के थे। हिन्दुओं में कन्याओं के जन्म लेते ही मार दिया जाता था। गुरु गोविन्द सिंह ने इन बुराइयों को दूर करने के लिए कहा कि वे किसी प्रकार के अंधविश्वास को न मानें। जब उन्होंने पंच-प्यारों को दीक्षित किया तो उस समय की घटना और उनका भाषण देखने योग्य है।

'सढौरा के सैयद बुधूशाह, जो अपने संत स्वभाव के कारण प्रसिद्ध थे, गुरु गोविन्द सिंह से मिलने आए। उन्होंने गुरु की सेवा के लिए पांच सौ पठानों को भी भेजा था, लेकिन वे धान के लालच में गुरु का साथ छोड़ गए। जब बुधूशाह को इस बात का पता चला तो उनको बहुत दुख हुआ और अपने चार बेटों , एक भाई और सात सौ सिपाहियों के साथ गुरु की सेवा में हाजिर हो गए। मंगानी नामक स्थान पर पहाड़ी राजाओं और गुरु गोविन्द सिंह के बीच घमासान युद्ध हुआ, कृपाल सिंह को छोड़कर उनके बाकी सब सरदार जान बचाकर भाग निकले। इस लड़ाई में बुधूशाह के रिश्तेदारों ने और सैनिकों ने बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया। गुरु के रिश्ते का भाई संगाशाह और पीर बुधूशाह के दो पुत्र मारे गए। गुरु ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए पीर बुधूशाह को कृपाण, कंघा, अपने कुछ टूटे हुए केश और पगड़ी भेंट की। नाभा में ये वस्तुएं आज भी पवित्र स्मृति चिन्हों के रूप में संजो कर रखी हुई हैं।'

गुरु गोविन्द सिंह के जीवन से जुड़ी हुई तमाम ऐसी घटनाएं हैं जो साझा संस्कृति की अद्‌भुत मिसाल हैं। चमकौर की घमासान लड़ाई के बाद गुरु की जान बचाने के लिए उनके शेष बचे हुए पांच शिष्यों ने सुझाया कि

वे वहां से चल जाएं। भारी मन इस बात को स्वीकार किया और माछीवाड़ा के जंगल में पहुंचे, जो रोपड़ और लुधियाना के बीच है। पैदल चलने के कारण गुरु के पैरों में छाले पड़ गए थे, और उनसे चला नहीं जा रहा था। यहां पहले से निर्धारित योजना के तहत उन्हें तीन सिक्ख मिले। जहां वे ठहरे थे वहां उनकी मुलाकात दो पठानों से हुई, उनमें से एक के घर वे रूके। मुगल सेना गुरु की तलाश में वहां पहुंची, सेना ने पूरे घर की तलाशी ली, मगर गुरु को नहीं पा सकी। इन्होंनें गुरु गोविन्द सिंह को छुपा लिया था। वहां से सुरक्षित निकालने के लिए दो पठानों और तीन सिक्खों ने गुरु को चारपाई पर लिटाया और यह कहकर मुगल सेनाओं के बीच से निकाला कि यह हमारा पीर है, यह हाल ही में हज करके लौटे हैं और आज कल इनका व्रत चल रहा है। इस घटना से अनुमान लगाया जा सकता है कि धर्म के आधार पर लोगों में किसी तरह का भेदभाव नहीं था। इतिहास में दो अलग अलग धर्मो से संबंधित शासकों के बीच की लड़ाई का कारण धार्मिक नहीं बल्कि राजनीतिक था। दोनों धर्मों के लोग एक दूसरे के दुख तकलीफों में शामिल होते थे।

इस तरह कहा जा सकता है कि गुरु गोविन्द सिंह ने सभी धर्मो को समान समझा। वे धार्मिक आधार पर भेदभाव को अनुचित समझते थे, उनके यहां हिन्दू व मुसलमान दोनों के लिए दरवाजे खुले थे। उनको किसी एक धर्म का रक्षक कहना या किसी विशेष सम्प्रदाय तक सीमित करना उनके उदार व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं है और उन्होंनें किसी धर्म के खिलाफ लड़ाई लड़ी यह मानना तो उनका एवं उनके विचारों का अनादर करना है। उनकी लडाई एक राजा से थी, न कि किसी धर्म के नेता से। उनका राजाओं से मतभेद धार्मिक आधार पर नहीं था, बल्कि यह लड़ाई पूरी तरह से राजनीतिक थी। यह लड़ाई राजनीतिक थी, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उनके खिलाफ लड़ने वालों में हिन्दू राजा बहुत थे। उनके अधिकतर लड़ाई या तो इनसे सीधी-सीधी थी या फि र वे मुगल शासकों के सहायक थे। युद्ध के दौरान मुगल सेनापति सैयद खां गुरु गोविन्द सिंह से इतना प्रभावित हुआ कि उसने युद्ध करना ही छोड़ दिया।

औरगंजेब के बाद बहादुरशाह गद्दी पर बैठा। उसने गुरु गोविन्द सिंह को मिलने का निमंत्रण दिया। गुरु गोविन्द सिंह ने निमंत्रण स्वीकार किया। बहादुर शाह ने आगरा में गुरु गोविन्द सिंह का भव्य स्वागत किया, बहुमूल्य उपहार दिए। वहां ठहरने का अनुरोध किया। गुरु गोविन्द सिंह ने इसे सरहिंद के नवाब के प्रजा पर अत्याचारों के बारे में बादशाह को

अवगत कराने का अच्छा अवसर समझकर स्वीकार कर लिया।

इससे लगता है कि गुरु के मन में मुसलमानों के प्रति कोई शंका नहीं थी। उनकी लड़ाई तो शासक औरगंजेब से थी। यहां एक दिन बादशाह ने गुरु से कहा, 'हमारे धर्म से अच्छा और कोई धर्म नहीं है। फिर नर्क से छुटकारा चाहने वाले सब लोग इस धर्म को क्यों नहीं स्वीकार कर लेते?' उतर में गुरु ने कहा, 'बादशाह सलामत, मोहर का मूल्य ऊपर छपी हुई तस्वीर के कारण नहीं बल्कि जो उसके अंदर है, उसके कारण है। नकली सिक्के पर भी तो शाही मोहर छपी होती है, लेकिन यह बाजार में नहीं चलता। उसे कोई नहीं लेना चाहता। ठीक यही बात धर्म पर लागू होती है। ईश्वर यह नहीं देखता कि हृदय के ऊपर किसकी छाप लगी है वह तो हृदय के अंदर देखता है, उसी के अनुसार फैसला करता है कि कौन स्वर्ग जायेगा और कौन नर्क। मैं एक ही ईश्वर को मानता हूं, दो या तीन को नहीं, और काफिर उसको मानता हूं, जो ईश्वर के अस्तित्व में ही विश्वास नहीं करता।'

गुरु गोविन्द सिहं की सारी जिन्दगी मुगल शासकों के खिलाफ लड़ाई में बीती, उनसे निरंतर संघर्ष करना पड़ा, लेकिन उनके प्रति धार्मिक नफरत जरा भी नहीं थी। उन्होंनें अपने अनुयायियों से कहा कि दूसरे धर्मों का आदर करो। सभी मनुष्यों को एक समान मानने के लिए कहा।

मानस की जाति सबै एक पहचानबो

**

देहुरा मसीत सोई
पूजा और निमाज ओइ।

**

करता करीम सोई
राजक रहीम ओई
दूसरो न भेद कोइ।

**

पुरान और कुरान ओई।

**

केते गंगबासी केते मदीना मका निवासी।

**

बेद पुरान कतेब कुरान अभेद।

गुरु गोविन्द सिंह ने कहा कि ईश्वर और अल्लाह में कोई अन्तर नहीं है। उनका मानना है कि सभी धार्मिक ग्रन्थों में एक जैसी शिक्षाएं हैं चाहे वह कुरान हो जिसे मुसलमान पवित्र मानते हैं चाहे वह वेद या पुराण हों जिसे हिन्दू पूज्य मानते हैं। इनमें मूलभूत एकता है इनमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। गुरु गोविन्द सिंह ने धर्मों के बीच व्याप्त एकता के सूत्रों को ढूंढा। उनका मानना था कि गंगा को पूज्य मानने वाले लोगों और मक्का को पवित्र मानने वाले लोगों में कोई अन्तर नहीं है। इस तरह कहा जा सकता है कि मध्यकाल में धर्म के आधार पर झगड़ा नहीं था, दो धर्मों को मानने वाले शासकों की लड़ाई के कारण राजनीतिक होते थे।

टीपू सुल्तान

टीपू सुल्तान मैसूर का राजा था, जो हैदरअली के बाद राजगद्दी पर बैठा। टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों से कड़ा संघर्ष किया। वह आखिरी दम तक अंग्रेजों से लड़ा। भारत के इतिहास में टीपू सुल्तान एक ऐसा राजा है जो कि अंग्रेजों से लड़ता हुआ मारा गया। अंग्रेजों के खिलाफ एक संयुक्त मोर्चा बनाने के लिए भी उसने कोशिश की, पर उसे कोई विशेष कामयाबी हासिल नहीं हो सकी। इसके लिए उसने अपने आस-पास के राजाओं से संपर्क साधना चाहा था। टीपू सुल्तान का जीवन धार्मिक दृष्टि से बहुत उदार रहा, वह किसी से धार्मिक आधार पर भेदभाव नहीं करता था। वह सभी धर्म के अनुयायियों का आदर करता था। उसके शासन काल में सभी धर्मों के लोगों को समान अधिकार थे।

टीपू सुल्तान ने दक्षिण भारत के बहुत से मंदिरों को जागीरें दान दे रखी थीं, ताकि उनका रख-रखाव और देखभाल एवं पूजा आदि ठीक ढंग से हो सके। एक बार मराठा सेना ने टीपू सुल्तान की राजधानी श्रीरंगपट्टनम को घेर लिया, परन्तु उनको हार का मुंह देखना पड़ा तो उन्होंने वापस हटते हुए बस्तियों को तहस-नहस किया और शहर के पास कावेरी नदी पर स्थित श्रीरंगपट्टनम के मंदिर को भी लूटा और उसको क्षति पहुंचाई। टीपू सुल्तान ने बिना किसी भेदभाव के उसकी मुरम्मत करवाई और उसका पुनर्निर्माण करवाया। टीपू सुल्तान जब भी किसी अभियान पर निकलता था तो वह श्रृंगेरी में स्थित हिन्दुओं के मठ के शंकराचार्य से आशीर्वाद लेकर निकलता था। इसमें उसकी कितनी आस्था थी इसका अनुमान सहज ही इस बात से लगाया जा सकता है कि उसने इस मठ में शारदा की मूर्ति के निर्माण के लिए धन दिया।

भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने 'धर्मों की आधारभूत

अन्तर्दृष्टि' लेख में लिखा कि 'टीपू सुल्तान ने कितने ही अवसरों पर, शृंगेरी के शंकराचार्य से भगवान से प्रार्थना करने के लिए अनुरोध किया। एक बार जब उसके कल्याण के लिए शंकराचार्य के पथ-दर्शन में सहस्र चण्डी जप हो रहा था, तब उसने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की थी।'[9] श्री रंगनाथ का प्रसिद्ध मंदिर उसके महल से केवल 100 गज की दूरी पर था।

बहादुरशाह जफर

बहादुरशाह जफर अन्तिम मुगल सम्राट थे जब 1857 में भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम लड़ा गया। इस लड़ाई में हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर भाग लिया। दोनों धर्मों के लोग पूरी बहादुरी से और कंधे से कंधा मिलाकर लड़े। हिन्दू-मुस्लिम एकता की यह अनुपम मिसाल है। लोगों की शक्ति को अंग्रेजों ने पहचान लिया था, इसके बाद ही अंग्रेजों ने भारतीय जनता में फूट डालने के लिए धर्म के आधार पर उनको भड़काना शुरू किया। इतिहास को इस तरह से प्रस्तुत करना शुरू किया जिससे कि वैमनस्य बढ़े। इतिहास को साम्प्रदायिक नजरिए से पेश करने के लिए अंग्रेजों ने विशेष रूप से इतिहासकारों को बुलाया, जिन्होंने तथ्यों को इस ढंग से तोड़-मरोड़ कर पेश किया कि पूरा इतिहास ऐसे लगने लगा जैसे कि यह हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का दौर रहा हो, जबकि ऐसा नहीं है।

1857 का ही उदाहरण लें जब दोनों धर्मों के लोग इकट्ठे मिलकर लड़े। इसमें सैनिक भी शामिल थे और विभिन्न रियासतों के राजा भी थे, जिनके राज्य को अंग्रेजों ने किसी न किसी बहाने से अपने राज्य में मिला लिया था। इसमें मंगल पांडे भी शामिल थे, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई भी शामिल थीं, तात्या टोपे भी शामिल थे। इन सब देशभक्तों ने मिलकर अपना नेता बहादुरशाह जफर को चुना। इन सब वीरों को बहादुरशाह उपयुक्त व्यक्ति नजर आया। इनको बहादुरशाह की वफादारी व देशभक्ति पर पूरा भरोसा था। बहादुरशाह जफर में भारत देश के प्रति भक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। अपने जीवन के आखिरी दम तक उन्होंने इसके लिए काम किया। बहादुरशाह जफर बहुत अच्छे शायर थे उन्होंने लिखा :

गाजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की
तख्त लंदन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की।[10]

भारत की मिट्टी से इतना प्यार करते थे कि जब 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों ने उनके जवान बेटों के सिर काट कर उनके सामने पेश किए तो उन्होंने उफ् तक नहीं की। उनको इस देश से कितना प्यार था

उसका अन्दाजा इन पंक्तियों से लगाया जा सकता है।

कितना बदनसीब है जफर दफ्न के लिए
दो गज जमीं भी न मिली कूए यार में

साम्प्रदायिक शक्तियां इतिहास के तथ्यों को इस तरह तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करती हैं जिससे कि वर्तमान में साम्प्रदायिक विद्वेष पनपे। साम्प्रदायिक दृष्टि से इतिहास का प्रस्तुतिकरण साम्प्रदायिक चेतना पैदा करने का कारगर माध्यम है और तथ्यों का सही प्रस्तुतिकरण व समग्र विश्लेषण इसकी काट है। भारतीय इतिहास ऐसी परम्पराओं से भरा पड़ा है जिसमें कि हिन्दू और मुसलमान के साझे जीवन की तस्वीरें हैं। एक ओर राजाओं का इतिहास है जो लड़ाई-मार-कुटाई से भरपूर है, दूसरी ओर आम लोगों का इतिहास है जिसमें साझे दुख और तकलीफें हैं और साझे रस-रंग व त्यौहार-उत्सव हैं। साम्प्रदायिक शक्तियों का मकसद है लोगों को आपस में लड़वाना और अपना उल्लू सीधा करना, इसलिए वे इतिहास की ऐसी घटनाओं को उठाते हैं जिससे कि फूट पैदा हो और यदि कोई उनको इस तरह की चीज नहीं मिलती तो वे इस तरह की बेबुनियादी कहानियों को गढ़ लेते हैं और उसका धुंआधार प्रचार करते हैं। इस प्रचार के नीचे तथ्यों को छुपा देते हैं। अत्यधिक प्रचार और बार-बार एक बात को सुनने के कारण लोग उन बातों को सच की तरह मानने लगते हैं, उसकी जांच-पड़ताल नहीं करते। इस तरह साम्प्रदायिक चेतना को धारण कर लेने से जब साम्प्रदायिक शक्तियां उन्माद का वातावरण निर्माण करती हैं तो लोग मुखर रूप से साम्प्रदायिक नजर आते हैं।

संदर्भ :

1. कम्युनलिज्म इन इण्डिया : ए हिस्टोरिकल एंड इम्पीरकल स्टडी; असगर अली इंजीनियर; पृ. 12, विकास पब्लिशिंग हाउस दिल्ली; 1995

2. वही; पृ. 14

3. सांस्कृतिक एकता का गुलदस्ता; डॉ. इकबाल अहमद; पृ.-15 ; प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रलय, भारत सरकार, दिल्ली; 1993

4. छत्रपति शिवाजी : कारागार से सिंहासन ; गो. प. नेने; पृ.-41 ; राजपाल एण्ड संस, दिल्ली ; 1974

5. छत्रपति शिवाजी: कारागार से सिंहासन; गो. प. नेने; पृ. 93; राजपाल एण्ड संस, दिल्ली; 1974

6. संस्कृति के चार अध्याय; रामधारी सिंह दिनकर; पृ.-346; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; 1994

7. छत्रपति शिवाजी; लाला लाजपतराय; पृ. 90-91; हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली; 2001

8. मिडिवियल इण्डिया कल्चर एंड थाट; एम. एल. भागी; पृ0 58; द इण्डियन पब्लिशर; अम्बाला कैंट, 1965

9. भारतीय संस्कृति कुछ विचार; राधाकृष्ण; पृ.-56; मैसूर आर्कियोलोजिकल डिपार्टमेण्टल एनुएल रिर्पोट 1916, पृ. 74-75 से उद्धृत

10. स्वतन्त्रता संग्राम के अमर शहीद; के. एल. जौहर; पृ.- 113; स्नेह प्रकाशन, नोएडा

साम्प्रदायिकता और मिथ्या प्रचार

साम्प्रदायिक शक्तियां एक समुदाय के बारे में घृणा व नफरत पैदा करने के लिए उसके बारे में तरह तरह के झूठ प्रचारित करती हैं। देश की सारी समस्याओं का जिम्मेदार एक वर्ग को ही ठहरा देती हैं। मुसलमानों के बारे में भी हिन्दू साम्प्रदायिक तत्व ऐसा ही प्रचार करते हैं। वे बात को इस तरह से उठाते हैं कि समस्या से उनका कुछ लेना देना नहीं होता लेकिन इसके बहाने वे अपना साम्प्रदायिक स्वार्थ साध लेते हैं।

मुसलमान चार शादियां करते हैं और जनसंख्या में वृद्धि करते हैं।

साम्प्रदायिक शक्तियों का कहना है कि मुसलमानों चार चार शादियां करने की छूट है। वे चार शादियां करते हैं और जनसंख्या में वृद्धि करते हैं, और एक दिन वे हिन्दुओं से अधिक हो जायेंगे। यह बात तथ्यपरक नहीं है, लेकिन इसका इतना प्रचार किया गया है कि आम लोगों की चेतना का हिस्सा बन गई है। इस बात में कितनी सच्चाई है इस बात की जांच पड़ताल करना जरूरी है।

1. भारत में 1000 पुरुषों के पीछे 950 से कम महिलाएं हैं। मुसलमानों में भी स्त्री-पुरुष अनुपात लगभग यही है। इसलिए प्रत्येक आदमी चार चार शादियां नहीं कर सकता, क्योंकि इसके लिए तो एक हजार पुरुषों के पीछे चार हजार औरतें होनी जरूरी हैं। यदि सभी मुसलमान चार चार शादियां करने लगें तो केवल 25 प्रतिशत की शादियां हो पाएंगी और बाकी को बिना शादी के ही रहना पड़ेगा।

2. शादी से जनसंख्या बढ़ोत्तरी का कोई सम्बन्ध नहीं है। जनसंख्या वृद्धि औरतों की संख्या पर निर्भर करती है, न कि शादियों पर। एक औरत से 9 महीने में एक (अपवाद को छोड़कर) बच्चा पैदा होता है। चाहे चार पुरुषों की एक पत्नी हो या फिर एक पुरुष की चार पत्नियां हों।

3. यदि जनसंख्या इसी गति से बढ़ती रहे तो मुसलमानों की जनसंख्या को हिन्दुओं के बराबर आने में कम से कम चार हजार वर्ष तो लगेंगे ही। जब भारत आजाद हुआ तो मुसलमानों की जनसंख्या 11 प्रतिशत थी और अब 12 प्रतिशत है।

वर्ष	कुल जनसंख्या करोड़ में	हिन्दू प्रतिशत	मुस्लिम प्रतिशत	ईसाई प्रतिशत
1961	43.9	83.4	10.5	2.60
1971	54.8	82.7	11.2	2.44
1981	68.5	82.4	11.7	2.32
1991	85.6	82.0	12.2	--

4. बहुविवाह की प्रथा सबसे अधिक आदिवासियों, बौद्धों, जैनियों और हिन्दुओं में पायी गई, इस क्रम में मुसलमान सबसे पीछे हैं।

वर्ष	बहु विवाहित हिन्दू-परिवार	बहु विवाहित मुस्लिम-परिवार
1961	5.8 प्रतिशत	5.7 प्रतिशत
1989	5.06 प्रतिशत	4.3 प्रतिशत

5. जनसंख्या के घटने या बढ़ने का कारण कोई धर्म नहीं है, बल्कि अशिक्षा और गरीबी है। शिक्षित हिन्दू और शिक्षित मुसलमानों में जनसंख्या वृद्धि एक जैसी है। अशिक्षित व गरीब हिन्दू और अशिक्षित व गरीब मुसलमानों में जनसंख्या वृद्धि एक जैसी है। केरल के मुसलमान और उत्तरप्रदेश के मुसलमानों की जनसंख्या वृद्धि में काफी अन्तर है। केरल के मुसलमानों की जनसंख्या वृद्धि दर उत्तरप्रदेश के हिन्दुओं से कम है।

6. इस्लाम धर्म के प्रणेता हजरत मुहम्मद ने जो चार शादियों की इजाजत दी थी असल में वह छूट नहीं थी, बल्कि वह एक बंधन था। उस समय कुछ लोग बहुत अधिक शादियां कर लेते थे और वे अपनी पत्नियों से एक समान व्यवहार नहीं कर पाते थे, इसलिए हजरत मुहम्मद ने अधिकतम चार शादियों के साथ यह शर्त भी लगाई थी कि सब पत्नियों के साथ न्याय हो।

7. विचार करने की बात है कि साम्प्रदायिक शक्तियां इसको अपने साथ अन्याय कैसे कहती हैं, यदि इसमें अन्याय व शोषण है तो मुस्लिम महिला के साथ है और उसके प्रति उनकी कोई सहानुभूति नहीं है। वे अपने लिए चार शादियां करने का अधिकार मांगती हैं, जो असल में उनकी पुरुषवादी सोच को दर्शाता है।

मुसलमान क्रूर, हिंसक व आतंकवादी होते हैं

मुसलमानों के बारे में यह प्रचार जोर शोर से किया जाता है कि वे अधिक क्रूर होतें हैं और इसके पीछे कई बेहूदा तर्क दिए जाते हैं। यह कहा जाता है

वे मांसाहारी होते हैं इसलिए उनको हिंसा करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती। आम धारणा है कि जैसा आहार होगा वैसा ही व्यवहार व विचार होगा। कहावत है कि 'जैसा खाओगे अन्न वैसा होगा मन।' इस धारणा में यह मान लिया जाता है कि जो शाकाहारी होगा वह स्वभावत: ही सहिष्णु व उदार होगा तथा जो मांसाहारी होगा वह स्वभावत: ही क्रूर व हिंसक होगा। यह बात न तो तथ्यपरक है और न ही तर्कपरक।

इस परिभाषा को सच मान लिया जाए तो यह मानना पड़ेगा कि दुनिया में केवल दस प्रतिशत लोग ही दयालु व सहिष्णु हैं और नब्बे प्रतिशत लोग क्रूर व हिंसक हैं क्योंकि दुनिया में नब्बे प्रतिशत लोग मांसाहारी हैं और दस प्रतिशत शाकाहारी। मानव के इतिहास में एक समय ऐसा रहा है जबकि मनुष्य के पास मांस के अलावा खाने के लिए कुछ नहीं था। प्राचीन भारत में भी खूब मांस खाया जाता था और जब वैदिक समाज में इस कारण पशुओं की बहुत ज्यादा हत्या होने लगी तो जैन और बौद्ध धर्म ने इसका विरोध किया, जो कि कृषि समाज के विकास के लिए बहुत जरूरी था।

समाज के विकास के साथ, स्थान व जलवायु के अनुसार मांसाहार की परिभाषा भी बदलती रही है। समुद्र के आस पास रहने वाले लोगों के पास मछली के अलावा खाने के लिए कुछ नहीं है। मछली को मांसाहार की श्रेणी में डालकर यदि खाना निषिद्ध कर दें तो उनके पास खाने के लिए कुछ नहीं बचेगा। मछली को 'जल तोरी' व अण्डे को 'राम लड्डू' कहकर खाने वाले 'शाकाहारियों' की संख्या भी काफी है। यदि शाकाहार को ही दयालुता व सहिष्णुता के व्यवहार का पर्याय मान लिया जाए तो जर्मनी के क्रूर शासक हिटलर को करोड़ों की संख्या में निर्दोष लोगों की जान नहीं लेनी चाहिए थीं, क्योंकि वह तो शुद्ध शाकाहारी था।

मनुष्य में हिंसक प्रवृतियों के पनपने का कारण सामाजिक सांस्कृतिक विकास है न कि आहार। क्रूरता व सहिष्णुता का सम्बन्ध व्यक्ति के दिमाग से है न कि शरीर से। आहार तो शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है, उसका दिमाग से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। मानव शरीर को जिन्दा रखने के लिए तथा काम करने के लिए जिस ऊर्जा की जरूरत होती है वह उसे अनाज, सब्जी, मांस, दूध, आदि से मिलती है। मनुष्य अनाज, मांस, दूध आदि का सेवन करता है उसका शरीर इनमें से मंड, प्रोटीन व वसा , विटामिन आदि के रूप में उससे ऊर्जा लेता है। फिर ये ऊर्जा चाहे उसे मांस से मिले या अनाज से या दूध से। वह मांस और अनाज-सब्जी से मिली ऊर्जा में कोई भेदभाव नहीं करता। भोजन का सारा स्वाद तो सिर्फ गले तक ही सीमित है, पाचन तंत्र के लिए

मांस व अनाज में कोई अन्तर नहीं है।

ये कहना कि मांसाहारी क्रूर व हिंसक होते हैं और शाकाहारी दयालु व सहिष्णु बिल्कुल बेबुनियादी बात है। दयालु या हिंसक होना किसी समुदाय का गुण नहीं है, बल्कि यह विशिष्ट व्यक्ति की विशेषता है। चाहे व्यक्ति किसी भी धर्म से ताल्लुक रखता हो वह हिंसक हो सकता है और दयालु भी हो सकता है। फिर मांस सिर्फ मुसलमान नहीं खाते बल्कि हिन्दुओं में दलित अपनी भूख मिटाने के लिए मरे हुए जानवरों का मांस तक खाते हैं, आदिवासी भी लगभग मांस खाते हैं। असल में जो समाज के गरीब वर्ग हैं वे अपने अस्तित्व के लिए मांस खाते हैं और इससे उनकी सहिष्णुता व दयालुता में कोई नकारात्मक असर नहीं पड़ता। लेकिन साम्प्रदायिक शक्तियां हर बात को साम्प्रदायिक रंग देती हैं साम्प्रदायिक चेतना पैदा करने के लिए दूसरे धर्म के लोगों के प्रति घृणा फैलाने के लिए उनके खाने को भी प्रयोग करते हैं।

यह बात भी आमतौर पर कही जाने लगी है कि इस्लाम जिहाद सिखाता है और सभी आतंकवादी मुसलमान हैं। यह भी होता है कि जब कोई गुजरात-नरसंहार की बात करता है तो एकदम काश्मीर की बात शुरू हो जाती है, दंगा पीड़ितों की बात करते हैं तो साम्प्रदायिक दृष्टि एक दम काश्मीरी पंडितों की बात करने लगते हैं। साम्प्रदायिकता और आतंकवाद दोनों बहुत ही घातक हैं और देश के लिए तथा मानवता के लिए नुक्सानदायक हैं, लेकिन दोनों की प्रकृति भिन्न है। आतंकवादी लोगों में भय व दहशत पैदा करने के लिए हिंसा करता है वह भीड़ भरे बाजार,बसों में गोली या बम से लोगों को मारते हैं और यह नहीं देखते कि वे किस धर्म के लोगों को मार रहे हैं। वे अपना निशाना सभी समुदायों और धर्मों के लोगों को बनाते हैं। उनका मकसद सरकार को अस्थिर करना होता है जैसा कि काश्मीर के आतंकवादी कर रहे हैं, वे वहां मुसलमानों को ही तो मार रहे हैं। साम्प्रदायिक शक्तियां एक समुदाय विशेष के लोगों को चुन चुन कर मारते हैं। आतंकवाद में केवल एक धर्म के लोग शामिल नहीं हैं, बल्कि अपने राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सभी धर्मों के स्वार्थी लोग इस घिनौने तरीके को अपनाते रहे हैं। पंजाब में अलगाववादी सिक्खों ने खालिस्तान के लिए यही तरीका अपनाया था, श्रीलंका का सबसे बड़ा आतंकवादी संगठन एल.टी.टी.ई. हिन्दू धर्म से ताल्लुक रखता है और श्री राजीव गांधी की हत्या में भी इसी संगठन का हाथ था। असम में हिन्दू व मुसलमान दोनों आतंकवादी गतिविधियों में शामिल रहे हैं। नागालैंड व मिजोरम में ईसाई संगठन इनमें सक्रिय हैं। जब से 11 सितम्बर को अमेरिका के सत्ता केन्द्रों

पर हमला किया है तब से तो पूरी दुनिया के अखबारों में 'इस्लामी आतंकवाद' शब्द अत्यधिक प्रचलित हुआ है। इस्लाम के नाम पर जो आतंकवाद फैलाया जा रहा है वह इस्लाम धर्म के कारण नहीं है, बल्कि उसके सामाजिक-राजनीतिक कारण हैं

दंगा मुसलमान पहले शुरू करते हैं

साम्प्रदायिक शक्तियां अपने घृणित कार्य को छुपाने के लिए यह साबित करने की कोशिश करती हैं कि उन्होंनें दंगा शुरू नहीं किया, बल्कि उनको तो मजबूरी में दंगे में शामिल होना पड़ा है। इस बात का इतना प्रचार किया जाता है कि आम हिन्दू यह मानने लग जाता है। इस बात को जांचने-परखने की जरूरत नहीं महसूस करता। विभूति नारायण राय ने इस सवाल पर अपने अध्ययन 'साम्प्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस' में विचार किया है और भारत सरकार द्वारा दिए आंकड़े प्रस्तुत किए हैं। जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि दंगों में अधिकतर मुसलमानों का नुकसान होता है। मुसलमान ही अधिक मरते हैं, घायल होते हैं। विचार करने की बात है कि जो समुदाय दंगे की शुरूआत करता है तो उसके पास हथियार आदि की व अन्य सामग्री की तैयारी अधिक होनी चाहिए और उसका नुक्सान कम होना चाहिए, लेकिन आंकड़े इसके विपरीत बताते हैं।

तालिका

वर्ष	साम्प्रदायिक दंगों की संख्या	मृतकों की संख्या		कुल
		हिन्दू	मुसलमान	
1968	346	24	99	133
1969	519	66	558	674
1970	521	68	176	298
1971	321	38	65	103
1972	210	21	45	70
1973	242	26	45	72
1974	248	26	61	87
1975	205	11	22	33
1976	169	20	19	39
1978	219	51	56	108
1979	304	80	150	261
1980	427	87	278	375

योग	3949	530	1598	2289

विभूति नारायण राय: साम्प्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस (पृ.-61)

तालिका

कुछ बड़े दंगों में मरने वाले हिन्दुओं और मुसलमानों की संख्या है

स्थान	मृतकों की संख्या			
	हिन्दू	मुस्लिम	अन्य	कुल
अलीगढ(1961)	1	12	-	13
रांची/हटिया(अगस्त,1967	20	156	1	177
अहमदाबाद(सितम्बर 1969	24	430	58	512
भिवंडी (मई, 1970)	17	56	2	75
जलगांव (मई, 1970)	1	42	-	43
फिरोजाबाद(1972)	3	16	2	21
अलीगढ़ (1979)	6	19	3	28
मुरादाबाद (अग.-सित. 1980	18	142	6	166
मेरठ (अक्तूबर, 1982 तक)	6	21	2	29
योग	96	897	74	1067

विभूति नारायण राय: साम्प्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस (पृ.-62)

मुसलमान भारत-विभाजन के जिम्मेदार व देशद्रोही हैं

1947 में भारत को आजादी मिली, लेकिन साथ ही धर्म के आधार पर बंटवारा करके देश के दो टुकड़े कर दिए गए और पाकिस्तान बना। निश्चित रूप से यह दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी, जिसने लाखों लोगों को बेघर कर दिया और हजारों की जान चली गई। लाखों को शरणार्थी का जीवन जीना पड़ा। यह भयानक त्रासदी थी। हिन्दू साम्प्रदायिक शक्तियां इसका जिम्मेवार मुसलमानों को ठहराती हैं और कहती हैं कि जब मुसलमानों के लिए एक अलग देश बन गया है तो उनको वहां जाना चाहिए। इसी आधार पर वे नारा देते हैं कि 'मुसलमान के दो स्थान—पाकिस्तान या कब्रिस्तान।' इस बात को लेकर वे प्रचार करते हैं और सच्चाई छुप जाती है।

पहली बात तो यह है कि पाकिस्तान बनने के जिम्मेवार सारे मुसलमान नहीं हैं। केवल उच्च वर्ग के कुछ मुसलमान ही इसके जिम्मेवार हैं। पाकिस्तान की मांग मुख्य रूप से मुस्लिम लीग की थी, जिसको कि

सारे मुसलमानों का समर्थन हासिल नहीं था।

1. विख्यात अलीम और इस्लामिक इतिहासकार मौलाना शिबली ने मुस्लिम लीग के बनने पर ही प्रश्न चिन्ह लगाते हुए इसे 'अलीबुल-खिलकत'(अजीब उत्पत्ति), 'एक फ र्जी बेकार चीज', 'पोलिटिकल तमाशगर','बगीचा-ए-अतफल'(बच्चों का खेल) खिल्ली उड़ाई।

2. अबुल कलाम मौलाना आजाद, हकीम अफजल खान, डां. अंसारी, खान अब्दुल गफ्फार खान, मौलाना महमुदल हसन, मौलाना हुसैन अहमद मदनी, अताउल्ला शाह बुखारी, चौ. अफजल हक, रफी अहमद किदवई आदि नेताओं ने मुस्लिम लीग की संकीर्ण राजनीति का विरोध किया था।

3. 1937 में मुस्लिम लीग ने 482 सीटों पर चुनाव लड़ा, जिसमें वह केवल 109 सीटें ही जीत पाई। इस चुनाव में 73,19,445 कुल मुस्लिम वोट पड़े थे, जिसमें से मुस्लिम लीग को केवल 3,21,772 वोट मिले थे, जो कुल वोट का केवल 4.4 प्रतिशत था।

4. पंजाब, बंगाल, उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रान्त जैसे मुस्लिम बहुल राज्यों में कभी बहुमत तो क्या सम्मानजनक प्रदर्शन भी न कर पाई।

5. 23 मार्च, 1940 को जब मुस्लिम लीग ने लाहौर प्रस्ताव पारित किया तो उसके दो महीने बाद चालीस हजार के करीब अंसारी मुसलमानों ने इसके विरोध स्वरूप प्रदर्शन किया।

6. सुभाषचन्द्रबोस की आजाद हिंद फौज के कप्तान अबीद हसन ने 1941 में 'जय हिंद' का नारा दिया था। जो नेताजी की फौज में तो अभिनंदन के लिए तथा अभिवादन के लिए भी प्रयोग किया जाता था, बल्कि आज भी सारे भारतीयों का मंत्र है।

इस तरह यह कहना कि पाकिस्तान बनवाने में सारे मुसलमानों का हाथ है सरासर गलत है, और उनकी देशभक्ति पर प्रश्नचिन्ह लगाना है।

दूसरे, पाकिस्तान बनवाने में केवल मुसलमानों की भूमिका नहीं है, बल्कि अंग्रेजी सरकार व काग्रेस का नेतृत्व भी इसका उतना ही जिम्मेवार है। हिन्दू साम्प्रदायिक शक्तियों ने तो जिन्ना से भी पहले 1937 में ही दो राष्ट्र के सिद्धांत को मान्यता दी थी। सावरकर ने कहा कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग अलग राष्ट्र हैं और वे इकट्ठे नहीं रह सकते। 1938 में भाई परमानन्द ने कहा कि श्री जिन्ना का कहना है कि देश में दो राष्ट्र हैं और यदि जिन्ना सही हैं, और मैं मानता हूं कि वह हैं, तो एक राष्ट्र बनाने का काग्रेंस का सिद्धांत बेकार है। समस्या के दो समाधान हैं: एक, देश का दो हिस्सों में विभाजन, दूसरा देश के भीतर एक मुस्लिम देश को पनपने देना। इस तरह देश के विभाजन में सिर्फ मुस्लिम लीग को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

बंटवारे की योजना असल में तो अंग्रेजी सरकार की थी जो ऐसी स्थितियां पैदा करना चाहती थी कि नेतृत्व देश के दो टुकड़े करने पर राजी हो जाएं, और इसमें वे कामयाब हुए। 1942 में क्रिप्स मिशन का प्रस्ताव आया, जिस पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग की सहमति बन गई थी। इस प्रस्ताव के अनुसार केन्द्र के पास केवल रक्षा, संचार व मुद्रा व विदेशी मामलों के विभाग रहने थे और बाकी सारे विभाग राज्य सरकारों के पास थे, इसमें एक प्रावधान यह भी था कि दस वर्ष के बाद किसी भी राज्य को स्वतंत्र होने का अधिकार था। तत्कालीन कांग्रेस नेतृत्व विशेषकर नेहरू इस बात को मानते थे कि मजबूत केन्द्र के बिना देश का विकास नहीं हो सकेगा। नेहरू अपने इस विचार के कारण तथा पटेल भी मजबूत केन्द्र के पक्षधर थे, इसलिए विभाजित मगर मजबूत केन्द्र वाला देश चुना। अंग्रेज ऐसा चाहते ही थे क्योंकि विभाजित व कमजोर देश पर ही साम्राज्यवादी शक्तियों का दबदबा रह सकता है।

मुसलमानों को यह कहना कि उनके लिए अलग देश बन गया है वे वहां चले जांए, अन्यायपूर्ण है। जिन लोगों को पाकिस्तान चाहिए था, जो पाकिस्तान में अपनी तरक्की देख रहे थे, वे बंटवारे के बाद चले गए जो यहां रह गए वे इसलिए कि उनको पाकिस्तान मंजूर नहीं था, इसी से उनकी देश भक्ति व भारत से लगाव सिद्ध है। फिर बंटवारे में आबादियों की अदला-बदली की शर्त नहीं थी।

साम्प्रदायिक शक्तियां जो यह कहती हैं कि मुसलमानों को पाकिस्तान चले जाना चाहिए वे स्वयं भी इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि भारत में लगभग 12 करोड़ मुसलमान हैं जिनको न तो पाकिस्तान में भेज पायेंगें और न ही पाकिस्तान उनको अपने यहां स्थान देगा। वे भारत के नागरिक हैं, उनको भी पाकिस्तान में उसी तरह का व्यवहार मिलता है जैसा कि भारत के किसी भी नागरिक को। लेकिन साम्प्रदायिक तत्त्वों का मकसद देश में अशांति व तनाव पैदा करना, लोगों को धर्म के आधार पर एकत्रित करके सत्ता हथियाना व आम लोगों का शोषण करना व लोगों को वर्ग के आधार संगठित होने से रोकना है। साम्प्रदायिकता का चरित्र बताते हुए विभूति नारायण राय ने लिखा कि 'साम्प्रदायिकता को हमेशा एक शत्रु की जरूरत होती है और इस मामले में शत्रु दूसरा धर्मावलंबी ही हो सकता है।' मुसलमानों को हिन्दुओं का शत्रु के रूप में और उससे आगे बढकर देश द्रोही के रूप में प्रस्तुत करके भ्रम पैदा करते हैं।

मुसलमान भारत के प्रति उसी प्रकार वफादार हैं जैसे कि अन्य धर्म के लोग। इस बात के उदाहरण बार बार सामने आए हैं। 1948 में जब पाकिस्तानी सेना ने काश्मीर पर हमला कर दिया तो काश्मीर के मुसलमानों

ने उनका डटकर मुकाबला किया। 1965 में पाकिस्तान के खिलाफ युद्ध में वीरता के प्रदर्शन के लिए अब्दुल हमीद को भारतीय सेना का सर्वोच्च सम्मान परमवीर चक्र प्रदान किया गया। परमाणु बम बनाने में वर्तमान राष्ट्रपति व वैज्ञानिक ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का ही प्रमुख प्रयास रहा है। संगीत के क्षेत्र में मुसलमानों का अद्वितीय योगदान है, विलायत खां, अल्लारखा, बिस्मिल्लाह खां, अली अकबर खां ने भारतीय शास्त्रीय संगीत को बेमिसाल ऊंचाई प्रदान की है। टी. वी. सीरियल महाभारत के संवाद राही मासूम रजा ने लिखे। हर क्षेत्र में मुसलमानों का योगदान रहा है जिसके विस्तार में जाने की जरूरत नहीं है, जिसको प्रत्येक भारतीय समझता है। आलोक सक्सेना की कविता इसे व्यक्त करती है।

हमने बनाए यदि अजंता-एलोरा-कोणार्क
तो उन्होंनें बनाए ताजमहल, कुतुबमीनार, चार मीनार

हमने दिए कालिदास, बाणभट्ट, रवीन्द्रनाथ
तो उन्होंनें दिए खुसरो, गालिब, फिराक

हमने दिए जयदेव, कुमार गंधर्व, भीमसेन जोशी, जसराज
तो उन्होंनें भी दिए बड़े गुलाम अली खान, बिस्मिल्ला खान, डागर बन्धु

हमने दिए सहगल, हेमंत, मन्ना, लता
तो उन्होंनें भी दिए रफी, नूरजहां, नौशाद

हमने दिए अवनींद्रनाथ, नंदलाल बसु, रवि वर्मा, अमृता शेरगिल
तो उन्होंनें भी दिए हुसैन, रजा , आरा

सच है कि साड़ियां हमारे बनारस की हैं
लेकिन तार बुने हैं उन्होंने

मुरादाबाद हमारे ही देश का है; उसके बर्तन भी हमारे,
लेकिन उन पर उकेरी गई नक्काशी
उन्हीं की नन्हीं उंगलियों का कमाल है
फिरोजाबाद की कांच की चूड़ियां
हमारी मांओं-बहनों की कलाइयों में खनकती हैं

लेकिन बनती हैं उन्हीं की भट्टियों में
गजल गाते होंगें हमारे जगजीत सिंह
गजल आई यहां उन्हीं के साथ अरब से, फारस से

और जहां तक देश की, आजादी की बात है या शहादत की,
तो हमारे तात्या, लक्ष्मी, मंगल पांडे
गांधी, नेहरू, सुभाष
भगत सिंह, चन्द्रशेखर, रामप्रसाद के साथ ही

खड़े हैं उनके भी
जफर, टीपू, बेगम हजरतमहल
अबुल कलाम, अशफाक, अब्दुल हमीद

परिशिष्ट

रामधारी सिंह दिनकर

रामधारी सिंह दिनकर ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति को गहराई से समझा। उन्होंने अपने विचारों को 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक 'लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद' से प्रकाशित हुई है। इसके 1994 के संस्करण से 471 से 477 पृष्ठों को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

हिन्दुओं के बीच अन्धविश्वास और रूढ़ियां बहुत अधिक प्रचलित थीं। इनके प्रभाव से मुस्लिम समाज में भी कुछ रूढ़ियां उत्पन्न हो गईं और हिन्दुओं की देखा देखी मुसलमान जनता भी गाजी मियां, पांच पीर, पीर बदर, ख्वाजा खिजिर आदि कल्पित देवताओं की पूजा करने लगी। मुसलमानों के ये पीर, अक्सर ग्राम-देवता बन बैठे और हिन्दू-मुस्लिम, सब दरगाह पर माथा टेकने लगे। दशहरा और रथ-यात्रा-उत्सवों के अनुकरण पर मुहर्रम में ताजिये निकाले जाने लगे एवं ताजियों में हिन्दू और मुसलमान, बिना किसी भेदभाव के सम्मिलित होने लगे। ताजियों के पीछे चूंकि हजरत अली के बेटे हजरत इमाम हुसैन की याद थी और हजरत अली बल के आगार थे, इसलिए ताजियों की संरक्षकता गावों के नामी पहलवान करते थे जिनमें बहुधा हिन्दू पहलवानों की भी गिनती होती थी। अखाड़ों में जैसे हिन्दू 'जय महावीर' का नारा लगाते थे, वैसे ही, ताजियों के जुलूसों में सभी हिन्दू उल्लास के साथ 'या अली' पुकारते थे। हिन्दू, मुसलमान का छुआ हुआ नहीं खाते थे, फिर भी, दोनों जातियों का सामाजिक रिश्ता मजबूत होने लगा और एक घर से दूसरे घर में मिठाइयों के उपहार भी भेजे जाने लगे।

हिन्दुओं के बहुत से रिवाज ऊंचे तबकों के मुसलमानों में, आप से आप, चल पड़े। नजर से बचने के लिए न्योछावर उतारने की परिपाटी बादशाहों की हवेलियों में थी। शहजादे भी यात्रा पर निकलने से पहले बांहों पर मंत्र-सिद्ध यंत्र बंधवाते थे। मुहम्मद तुगलक लड़ाइयों पर जाने से पहले हिन्दू योगियों से आशीर्वाद मांगा करता था। बहुत से शेख और मुस्लिम

पीर, हिन्दू-मठों की नकल पर, गद्दियां भी स्थापित करते थे।

कहते हैं, राजपूतों की देखा-देखी कुछ मुसलमानों ने भी जौहर की प्रथा अपना ली थी। भटनेर के सूबेदार कमालुद्दीन ने, तैमूर से लड़ने जाने से पहले, अपने फौजियों की पत्नियों को आग में कूद जाने का आदेश दिया था।

जहांगीर जब काश्मीर गया, तब वहां उसने कुछ ऐसे मुस्लिम राजे भी देखे, जो सती-प्रथा को मानते थे तथा जिनका शादी-विवाह हिन्दू-घरानों से होता था।

छत्र-चंवर, हीरे-मोती, जड़ाऊ खड्ग, कीमती राजसी पोशाक और सजे हुए हाथी और घोड़े, ये विशेषताएं हिन्दू राज-दरबारों की थी। इस्लाम की परम्परा सादगी और मितव्यवता की थी। किन्तु, मुसलमान जब भारत पर राज करने लगे, तब उन्होंने भी इन आडम्बरों को अपना लिया; केवल अपना ही नहीं लिया (उनमें कई इजाफे भी कर दिये। इसी प्रकार, पान खाने की आदत मुसलमानों ने हिन्दुओं से ली थी, लेकिन, पीछे चलकर पान चबाने में उन्होंने हिन्दुओं को भी मात दे दी।) कहते हैं,14वीं सदी में पान खाने का रिवाज हिजाज और यमन तक फैल गया था।

फलों से अचार तैयार करने की प्रथा भारत की थी। वह मुसलमानों के यहां चल पड़ी। भारत के मोहन भोग का प्रभाव पुलाव पर पड़ा। भारतीय मुसलमानों का पुलाव और कोरमा वही नहीं रहा जो ईरान और खुरासान में था।

चीरा और पाग मुसलमानों ने हिन्दुस्तानियों से लिया और बदले में कसे- चुस्त पायजामे राजपूतनियों ने मुस्लिम नारियों से लिए। इस्लाम की परम्परा रेशम, मलमल और कीमती जेवरों के विरुद्ध थी, लेकिन भारत में बस जाने पर मुसलमानों ने भी इन्हें अपना लिया।

हिन्दुस्तान समृद्ध देश है, उसके तौर तरीके और सामाजिक आचार आकर्षक हैं, ये बातें भारत के बाहर भी खूब प्रचलित थीं। अतएव, जब मुसलमान हिन्दुस्तान आए, वे बड़ी ही शीघ्रता के साथ यहां के तौर तरीके सीखने लगे। इब्नबतूता ने अपनी किताब में सुल्तान मुहम्मद तुगलक की बेटी के विवाह का जो वर्णन लिखा है उससे मालूम होता है कि मुसलमानों पर हिन्दू-प्रभाव उस समय भी काफी पड़ चुका था।

रमल फेंककर सगुन विचारने की प्रथा अरब में भी थी, किन्तु यह प्रथा अच्छी नहीं समझी जाती थी। भारत में बसने के बाद मुसलमान हिन्दुओं के ही समान सगुन में विश्वास करने लगे।

मुस्लिम अमीरों के अन्धविश्वास में कुछ नफासत भी आने लगी।

हुमायूं और अकबर हर रोज पोशाक उस रंग की पहनते थे जो उस दिन के स्वामी ग्रह का रंग होता था। सौभाग्यवती मुस्लिम महिलाएं भी मांग में सिन्दूर लगाने तथा नाक में नथ और हाथ में शंख की चूड़ियां पहनने लगीं। विवाह के अवसर पर सोहागपुरा ले चलने की प्रथा भी मुसलमानों के यहां हिन्दुओं की देखा-देखी चली है। हिन्दू जैसे श्राद्ध करते हैं, कुछ उसी प्रकार मुसलमान भी मृत व्यक्तियों के नाम पर भोज करने और खैरात बांटने लगे। हिन्दुओं की जाति-प्रथा ने भी मुस्लिम समाज को प्रभावित किया और मुसलमान भी शरफ और रजील जातों का भेद करने लगे एवं जुलाहों और धुनियों के साथ शरीफ जात वालों को खाने-पीने में आपति होने लगी। बिहार में छोटी जात वाले मुसलमान भी छठ का व्रत (सूर्य-पूजा) रखने लगे और बंगाल में वे शीतला-माता की पूजा करने लगे। सच पूछिये तो हिन्दुत्व के दर्शन -पक्ष का प्रभाव इस्लाम पर उतना ही रहा, जितना सूफी मत पर पड़ चुका था। बाकी बातों में हिन्दू समाज की रूढियों और अन्धविश्वासों का ही प्रभाव मुस्लिम -समाज पर पड़ा और वह इस कारण कि मुसलमान प्राय: छोटे हिन्दू ही हुए थे जो बड़े हिन्दुओं के नैतिक रोब-दाब में थे। ये बेचारे इस्लाम में दीक्षित होने पर भी अपने पैतृक समाज की कुरीतियों को नहीं छोड़ सके।

मुगलकाल आते आते शबे-बरात का पर्व सारे भारत के मुसलमानों में मनाया जाने लगा। यह शायद, शिवरात्रि का अनुकरण था क्योंकि शिवरात्रि उस समय बड़ी ही धूमधाम से मनायी जाती थी। ताजिये का रिवाज भी भारत को छोड़कर और किसी देश में नहीं है। यह कदाचित्, रथयात्रा के अनुकरण पर निकला था।

हिन्दुओं ने मुसलमानों को जातिवाद का जहर पिलाया, बदले में मुसलमानों ने हिन्दुओं को पर्दे का शाप दिया। हिन्दुओं की देखा-देखी, मुसलमानों में भी ऊंच-नीच का भेद चलने लगा एवं यह प्रथा प्रचलित हो गई कि सैयद शेख की बेटी ले सकता है, किन्तु, शेख सैयद की बेटी से ब्याह नहीं कर सकता। स्नान की आदत मुसलमानों ने हिन्दुओं से ली। अरब के लोग पानी के अभाव में स्नान कम करते थे। पीछे हर देश के मुसलमान नहीं नहाने अथवा कम नहाने को अपना कर्तव्य मानने लगे। लेकिन, भारत में स्नान जनित आनन्द से वे काफी प्रभावित हुए। मुगलों के समय में तो मुसलमानों में नहाना इतना लोकप्रिय हो उठा कि बड़े-बड़े शहरों में स्नानागार के रोजगार वैसे ही चलने लगे जैसे आज होटल चलते हैं। एक आगरा शहर में ही कोई आठ सौ हम्माम थे। ऊंचे तबके के हिन्दुओं ने मुसलमानी खान-पान और पोशाकें, खुशी-खुशी, अपना ली।

बाकी तबकों में भी, हिन्दुओं की पगड़ी मुसलमानों ने और मुसलमानों की अचकन हिन्दुओं ने अपनाई। बिरियानी पकाने का रिवाज भारत में मध्य-पूर्वी एशिया से आया और हुक्के का रिवाज यहां इसलिए चला कि पुर्तगाली लोगों ने, मुसलमानों के समय में ही, भारत में तम्बाकू का प्रचार किया था। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जो समान रीति- रिवाज और आदतें प्रचलित हैं, उनकी काफी लम्बी सूची राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक, 'खंण्डित भारत' में दी है। मुसलमानों के भीतर कई सम्प्रदाय हैं, जिनका उद्‌भव और विकास हिन्दू-प्रभावों के कारण हुआ है। इनमें से एक सम्प्रदाय का नाम इस्लामिया है। खोजा लोग इसी सम्प्रदाय के हैं। खोजा सम्प्रदाय के कई विश्वास ऐसे हैं जिनमें हिन्दुत्व के वैष्णव-मत और इस्लाम के शिया-पंथ का मिश्रण दिखायी देता है। इस सम्प्रदाय की एक मान्यता यह भी है कि हजरत अली विष्णु के दसवें अवतार थे। खोजा लोगों की मस्जिदें अलग होती हैं। सामान्यत:, वे साधारण मस्जिदों में नमाज पढ़ने नहीं जाते हैं। इसी प्रकार, अली-इलाहिया सम्प्रदाय के मुसलमान आत्मा के आवागमन में विश्वास करते हैं।

अहिंसा और मुसलमान

मांस-भक्षण और भोग-लौलुप्य भारत में कम नहीं है। फिर भी शाकाहार, अहिंसा और गरीबी में सन्तुष्ट रहने का भाव, ये तीन गुण, विशेष रूप से भारतीय माने जाते हैं। यदि यह जानना हो कि किसी विदेशी पर भारत का कितना प्रभाव और कहां तक पड़ा है, तो देखना यह चाहिये कि उस आदमी ने मांस खाना कुछ कम किया है या नहीं, वह पहले की अपेक्षा अब अधिक जीवों को मारता है या कम जीवों को और गरीबी के प्रति उसका दृष्टिकोण क्या है।

भारतीय अहिंसा का प्रभाव, सबसे पहले, इस्लाम के सर्वोतम मानवों, यानी सूफियों पर पड़ा। बल्कि यह प्रभाव इस्लाम पर अरब में ही पड़ने लगा था। जब इस्लाम भारत में फैलने लगा तो मुस्लिम साधु और फकीर, अधिक से अधिक, शाकाहार की ओर मुड़ने लगे। उनकी देखा-देखी मांसाहार का कुछ थोड़ा त्याग गृहस्थ भी करने लगे। किन्तु अहिंसा का प्रभाव हुमायूं, अकबर और जहांगीर पर सबसे अधिक था। हुमायूं जब लौटकर दुबारा भारत-विजय के काम में लगा, तब कई महीनों तक उसने मांस खाना और शराब पीना छोड़ दिया था। उसका निश्चित मत था कि भक्ति और मांसाहार, दोनों काम साथ-साथ नहीं चल सकते और जो व्यक्ति ईश्वर का भक्त है, उसे गो-मांस तो हरगिज नहीं खाना चाहिये। अकबर,

सामान्यतः, मांस खाना पसन्द नहीं करता था। शुक्रवार और रविवार तथा हिन्दू-माह की प्रतिपदा तिथि को वह नियमपूर्वक निरामिष भोजन करता था। इसके सिवा, वर्ष के दो खास महीनों में वह किसी भी दिन मांस नहीं खाता था। इन दो महीनों में एक वह था जो अकबर का जन्म-माह पड़ता था। पीछे चलकर तो अकबर ने मांस खाना बिल्कुल ही छोड़ दिया था- यहां तक कि प्याज और लहसुन से भी परहेज करने लगा था। जहांगीर मांस का प्रेमी था, लेकिन, वह भी गुरुवार और रविवार को मांस-मछली नहीं खाता था।

अन्य आदान-प्रदान

इस्लाम का प्रभाव अमीरों की पोशाक और खान-पान पर भी पड़ा तथा रहन सहन एवं लिबास में ऊंचे तबकों के हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई फर्क नहीं रह गया। मुगल अमीरों ने बहुत सी बातें हिन्दुओं की अपना लीं। इसी प्रकार, हिन्दू अमीर भी बहुत सी बातों में मुसलमानी ढंग अपनाने लगे।

संगीत इस्लाम में वर्जित था, किन्तु सूफी तब भी संगीत के बड़े प्रेमी थे बल्कि यह कहना चाहिए कि सूफियों के यहां संगीत साधना का एक अंग समझा जाता था। भारतीय एवं ईरानी संगीत के मिलन से नयी-नयी चीजें निकल पड़ीं। ख्याल का अविष्कार जौनपुर के नवाब सुल्तान हुसेन शर्की ने किया था एवं कौव्वाली, कदाचित्, अमीर खुसरो की ईजाद है। कौव्वाली का आरम्भ और प्रचार धार्मिक संगीत के रूप में हुआ, यद्यपि, मस्जिदों में कौव्वाली नहीं पहुंच सकी। बाजों में रबाब, सरोद, दिलरुबा और ताऊस ऐसे हैं जो, शायद, मुसलमानों के लाए हुए हैं अथवा उनके ये नाम मुसलमानों के दिए हुए हैं। अमीर खुसरो के बारे में कहा जाता है कि वीणा को देखकर सितार का आविष्कार उन्हींने किया था तथा मृदंग पर से तबले भी उन्हींने निकाले थे। बीजापुर के इब्राहिम आदिलशाह ने संगीत पर 'नौरस' नाम की किताब लिखी थी। संगीत में हिन्दू और मुसलमान परस्पर जितने समीप हुए, उतने समीप वे कभी नहीं आए।

कई धातुओं से रसायन बनाने का रिवाज मुस्लिम आगमन के बाद विकसित हुआ। कागज बनाना और कलई करना भी यहां मुसलमानों ने आरम्भ किया। पत्थर, चांदी और सोने पर मीनाकारी के काम, जामदानी, कलाबतू, जरदोजी, किमखाब और जामेवार भी मुस्लिम-काल में ही चले।

गणित, ज्योतिष और वैद्यक में हिन्दू बहुत उन्नति किए हुए थे। इन विद्याओं का ज्ञान इस्लाम के भारत आगमन के पूर्व ही, अरब पहुंच चुका था। अरब वाले बाद को कुछ ज्ञान यूनान से भी लाए एवं इन दोनों को मिलाकर

उन्होनें भी इन विद्याओं में अच्छी प्रगति की थी। जब मुसलमान भारत आए उनका यह सामासिक ज्ञान भारत को भी प्राप्त हुआ। ज्योतिष के कुछ पारिभाषिक शब्द, इस प्रकार, इस्लाम की देन हैं। इस देश में देशान्तर और अक्षांश रेखाएं गिनने की प्रणाली भी मुसलमानों से ली हुई है। वर्ष फल बनाने की ताजिक-पद्धति भी यहां मुसलमानों के आने के बाद चालू हुई। ज्योतिष की अरबी पद्धति के आने के बाद ही, महाराज जयसिंह ने हिन्दू-पंचाग का सुधार किया और जयपुर, मथुरा, दिल्ली तथा काशी में वेधशालाएं बनवायीं।

ज्योतिष पर विदेशी प्रभाव इसलिए पड़ा कि भारत में इस विद्या का व्यवसाय अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। राजाओं और धनियों को बराबर ग्रह-शान्ति करवाने अथवा अपना भविष्य जंचवाने की उत्सुकता रहती थी। और इस उत्सुकता का अनुकूल लाभ पंडितों को प्राप्त होता था। इसलिए, राजे जिस भाषा के प्रेमी हुए, वहां के ज्योतिषियों ने भी उस भाषा का थोड़ा-बहुत सहारा लिया। यूनानियों के आगमन के बाद भारतीय ज्योतिष में रमनशास्त्र लिखा गया जिसके नाम में ही रोमन या यूनानी शब्द मौजूद है। कहते हैं, होरा-चक्र की पद्धति भी यूनान से यहां आई थी। जब शासन मुसलमानों का हुआ, तब अरब का प्रभाव भारतीय ज्योतिष पर पड़ना स्वाभाविक हो गया। ताजिक-शास्त्र वर्ष-फल, माह-फल आदि बताने की अरबी पद्धति है। इस शास्त्र के बीस-पचीस ग्रन्थ अपने यहां लिखे गए। इसी प्रकार, अरबों के रमल फेंककर सगुन विचारने की जो प्रथा थी, वह भी भारत पहुंची और रमल-शास्त्र पर भी काफी पुस्तकें लिखी गईं। ताजिक-शास्त्र की पुस्तकों में जो श्लोक मिलते हैं, उनमें अरबी और फारसी शब्दों का प्रयोग खुलकर किया गया है।

स्यादिक्कबालः इशराफयोगः

खल्लासरम् रद्दमुथोदपुफालिः
कुत्थम् तदुत्थोथदिवीरनामा।

यूनानी सम्पर्क के समय होरा, कौर्प्य, जूक, लेय, हेलि आदि दर्जनों यूनानी शब्द थे जिनका रूप संस्कृतवत् हो गया था। मुस्लिम-सम्पर्क से कितने ही अरबी और फारसी के शब्द संस्कृत में समा गए। एक श्लोक में तारीख शब्द का ऐसे प्रयोग है, मानो, वह पाणिनी का ही शब्द हो।

सिद्धों के समय से भारत में जो निराकारवादी सम्प्रदाय पनपते आ रहे थे, उनके बहुत से सदस्य तो मुसलमान हो गए और बहुत ऐसी जगहों पर रह गए जो हिन्दुत्व और इस्लाम, दोनों से नजदीक थीं। बंगाल के बाऊल ऐसे ही सम्प्रदायों के यादगार हैं। अजमेर में कुछ लोग अपने को हुसैनी ब्राह्मण कहते

हैं। ये न तो कट्टर हिन्दू हैं, न कट्टर मुसलमान। राजपूताने और आगरा जिले के मलकाना राजपूत मुसलमान हैं, मगर, वे हिन्दू के समान रहते हैं, राम नाम जपते हैं और दरगाहों पर भी जाते हैं। गुजरात के खोजा सम्प्रदाय पर वैष्णव धर्म का बहुत प्रभाव पड़ा था। वल्लभाचार्यी वैष्णवों के समान, खोजा लोग भी अपने को गुरु का परम-दास मानते हैं एवं गुरु को वे साक्षात् कृष्ण का अवतार समझते हैं। इनके बहुत से रीति रिवाज हिन्दुओं के से थे। किन्तु इधर वे भी कट्टरता की ओर लौट रहे हैं। बंगाल के बाऊल घरों में तो मुसलमानों की तरह रहते हैं, किन्तु, वे न तो कट्टर हिन्दू हैं, न कट्टर मुसलमान।

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य में जो वृद्धि मुगल काल में हुई, वह अब भी शेष है। आगरे के मलकाना राजपूत मियां ठाकुर कहलाना पसन्द करते हैं। क्षिति बाबू ने लिखा है कि अजमेर के पास कुछ ब्राह्मण हैं जो हुसैनी कहलाते हैं। कच्छ के मेमो लोग त्रिदेव को पूजते हैं एवं मामाशाह को ब्रह्म का अवतार मानते हैं। बिहार में भी कुछ ब्राह्मणों की पदवी खां है। उत्तर प्रदेश में कुछ ऐसे भी मुसलमान हैं जो राजपूत मुसलमान, तेली मुसलमान और ब्राह्मण मुसलमान कहलाते हैं।

बंगाल में हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों के बीच जो मिश्रण हुआ, उसका एक प्रमाण 'सत्यपीर' की पूजा भी मानी जा सकती है। यह पूजा हुसैनशाह के समय प्रवर्तित की गई एवं सत्यनारायण की पूजा इसका मूल स्रोत थी। विशेषता यह हुई कि सत्यपीर का पूजन करने एवं उनका महात्म्य सुनने को हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही जातियों के लोग जमा होते थे। बंगाल में रमाई पंडित ने एक शून्य-पुराण भी लिखा (14वीं सदी) जिसमें कहा गया कि ब्राह्मणों से सतधर्मी जब बहुत पीड़ित होने लगे तब उनकी रक्षा के लिए धर्म ने भी मुसलमानी रूप धारण किया और सभी देवता पैजामा पहन-पहन कर ब्राह्मणों को मारने आ गए।

डॉ. सुभाष चन्द्र : जन्म– 5 अक्तूबर 1965, **शिक्षा–** एम.ए., पी-एच.डी. (हिन्दी)। सक्रिय सांस्कृतिककर्मी, एम.एन. कॉलेज शाहाबाद-मारकण्डा, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) में हिन्दी-प्राध्यापक रहे; अब कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर पद पर। शिक्षा, साहित्य व संस्कृति पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। **शोध :** भीष्म साहनी के साहित्य में व्यक्त जीवन-दर्शन। **नुक्कड़ नाटक :** संकलन और विश्लेषण (रंगमंच के संदर्भ में)। **संपादन :** मेरी कलम से; जाति क्यों नहीं जाती? **अनुवाद :** भारत में साम्प्रदायिकता : इतिहास व अनुभव (अंग्रेजी से हिन्दी); आजाद भारत में साम्प्रदायिकता व साम्प्रदायिक दंगे (अंग्रेजी से हिन्दी); रजनीश बेनकाब (पंजाबी से हिन्दी); छिपने से पहले— नाटक (पंजाबी से हिन्दी)।
मौलिक चिंतन / लेखन : साझी संस्कृति; हरियाणा में उच्च शिक्षा : गहराता संकट; साम्प्रदायिकता; दलित आत्मकथाएं : अनुभव से चिंतन; आम्बेडकर से दोस्ती : समता और मुक्ति।

धर्म, संस्कृति, राष्ट्र, इतिहास, जाति इत्यादि पहचानों को संकीर्णता भरे संदर्भों से निकाल कर ही साम्प्रदायिकता से अलग किया जा सकता है— तार्किक मानवीय थीसिस, जो पूर्वाग्रहों को खारिज करने की प्रणाली बन जाती है।

साहित्य उपक्रम
साहित्य से दोस्ती

ISBN 81-8235-042-5
9 788182 350427
रु. 60.00